चन्दामामा

माँ-बच्चों का मासिक पत्र



उत्तम वैद्य

एक नगर में एक प्रसिद्ध वैद्य रहा करता था। उसने काफ़ी पैसा भी कमा लिया था। एक दिन कुछ मित्र उसकी प्रशंसा करने लगे। तब उसने उनसे कहा-"क्या मैं एक रहस्य तुम्हें बताऊँ? सच कहा जाय तो मैं अधम वैद्य हूँ।"

मित्रों को आश्चर्य हुआ। "यह कभी सच नहीं हो सकता। इस बात पर इस शहर में किसी को विश्वास न होगा।" उन्होंने कहा। "पर है यह सच ही! सुनिये! हम तीन भाई हैं और तीनों वैद्य हैं। हमारा बड़ा भाई उत्तम वैद्य है। वह आनेवाले रोगों को पहले ही जान लेता है। आहार में परिवर्तन करके वह रोग को आने से रोक देता है।"

"लोग यह भी नहीं जानते कि वह वैद्य है। हमारा दूसरा भाई मध्यम श्रेणी का वैद्य है। वह रोग को शुरू में ताड़ जाता, और तभी उसको निर्मूल कर देता। इसलिए लोग जान गये कि वह छोटी-मोटी बीमारियों का इलाज कर सकता था। और मैं अधम श्रेणी का वैद्य हूँ। रोग जब तक बढ़ नहीं जाता तब तक मैं उसे हटा नहीं पाता। उसके बाद दुनियाँ भर के कषाय, चूर्ण देकर, रोग से युद्ध करके जीतता हूँ। और रोग यदि दवाइयों के बस न आया तो उसकी शल्य चिकित्सा भी करता हूँ। इसलिए ही लोग मुझे बड़ा बैद्य कहते हैं।"





पहले कभी ग्रीस देश में कोई राजा था। वह समुद्र के किनारे, एक पहाड़ी पर किले में रहा करता था। उस तरफ जो नौकायें, जहाज वगैरह आते, उनको वह लूटता। खूब धन इकट्ठा करता। यह राजा बड़ा चालाक था। इस सरह धन जमा करके वह एक बड़ा महल बनवाना चाहता था और अपने को एक बड़ा राजा समझना चाहता था।

इस ग्रीक राजा के पास बहुत-सी गायें थीं। उसकी ये ही सम्पत्ति थी। परन्तु धीमे धीमे एक एक करके गायें गायब होने लगीं। जब ग्वाले से इस बारे में पूछा गया तो उसने कहा-"महाराज, इस पहाड़ की परली तरफ कोई जादूगर है। वह जादू मन्त्र जानता है। वही गायों को ले जा रहा है, यह हमारा सन्देह है। आप कृपया जरूर पूछताछ करके देखिये।"

राजा जादूगर की रहने की जगह मालूम करके, उसके घर की ओर गया। रास्ते भर उसको ऐसी निशानियाँ दिखाई दीं, जिनसे मालूम किया जा सकता था कि उसकी गायें उस रास्ते गई थीं।

जादूगर ने राजा को सादर निमन्त्रण किया। उसने उसके आगमन का कारण भी जान लिया। "आपकी गायें चली गई हैं? आपको यह सन्देह है कि वे मेरी गायों में मिल-मिला गई हैं। ज़रूर ढूँढ़िए। हो सकता है कि एक-दो मिल गई हो। आपकी गायें किस रङ्ग की थी?" उस जादूगर ने पूछा।

"सफेद। मेरी सब गायें सफेद हैं।" राजा ने कहा।

"आपका सन्देह और मेरा सन्देह हट गया है। मेरे पास काली रङ्ग की गायों

के सिवाय और किसी रङ्ग की गायें नहीं हैं। अगर आप चाहें तो स्वयं देखिये।" यह कहकर वह जादूगर, राजा को अपनी पशुशाला में ले गया। वहाँ बेशुमार गायें थीं। मगर सब काली।

राजा और कर ही क्या सकता था, अपने घर वापिस चला आया। "अरे अच्छा ही है, कुछ भी हो, उस जादूगर पर ज़रा नज़र रखना।" उसने अपने ग्वाले से कहा।

वे बहुत सावधान थे, फिर भी गायों के दो झुण्ड नदारद हो गये। राजा फिर एक बार जादूगर के यहाँ गया। उसे देखकर, उसने कहा-"तो क्या आपकी गायें फिर कहीं चली गई हैं?"

"हाँ, मैं यह देखने के लिए आया हूँ कि कहीं वे तुम्हारी गायों में तो नहीं मिल गई हैं!" राजा ने पूछा।

"अच्छा, तो देखिये। पर क्या आपकी गायें सफेद हैं या काली?"

"सब काली हैं।" राजा ने कहा।

"तब तो मामला टेढ़ा है। मेरी भी काली हैं। आपकी गायों के सीङ्ग हैं कि नहीं?" जादूगर ने पूछा।



"मेरी सब गायों के सीङ्ग हैं।" राजा ने कहा।

"तो देखना बेकार है। मेरे पास जितनी गायें हैं, उनके सीङ्ग नहीं हैं। आप चाहें तो देख लीजिये।" यह कहकर जादूगर, राजा को अपनी पशुशाला में ले गया। राजा को लगा कि वहाँ पहले की अपेक्षा कितनी ही अधिक गायें थीं। सब काली थीं और एक के भी सीङ्ग न था।

इस बार भी विवश हो, राजा घर लौट आया। उसे याद आया कि जब पिछली बार जादूगर की गायें उसने देखी



थीं, तो उन सब के सीङ्ग थे। पर यह बात कैसे सिद्ध की जाय?

राजा चालाक तो था ही, इस बार चोर को पकड़ने के लिए, उसने एक और उपाय सोचा। अब जितनी गायें उसके पास बच गई थीं, उन सब के खुरों में उसने नाल ठुकवा दिये।

थोड़े दिनों बाद, राजा का एक और गायों का झुण्ड गायब हो गया। इस बार अपने सब ग्वालों को लेकर राजा जादूगर के पास गया। राजा के साथ उतने ग्वालों को देखकर, जादूगर हैरान रह गया।

उसने राजा से पूछा-"क्या अब भी आपकी गायें भटक रही हैं?"

"हाँ, इस बार मैं उन्हें पकड़ लूँगा।" राजा ने कहा।

"आपकी गायें काली हैं या सफेद?" जादूगर ने पूछा।

"न काली हैं, न सफेद। दागोंवाली हैं। वे तेरे पास हैं।" राजा ने कहा।

"अरे, यह तो अच्छी बला है। मेरी भी दागोंवाली हैं।" जादूगर ने कहा।

"पहले तो तेरी गायें काली थीं, कब दागवाली हो गई?" राजा के पूछा।

"हाँ, होने को तो मेरी गायें काली ही हैं, पर उनके दाग भी हैं। शायद आपने उन्हें अच्छी तरह न देखा था। आपके गायों के सीङ्ग है कि नहीं?" आदूगर ने पूछा।

"मैं इस बार धोखा खानेवाला नहीं हूँ। मेरी गायों के जो निशान हैं, उन्हें मेरे आदमी जानते हैं। वे अन्दर जाकर, निशान का पता लगाकर, हमारी गायें पहचान लेंगे। तुम्हारी चोरी पता लग जायेगी, अब भी सच कह दो।" राजा ने कहा।

जादूगर ने राजा के पैर पकड़कर कहा-"महाराजा, माफ़ कीजिये। आपकी गायों के आठ झुण्ड मैने चुराये हैं। चोरी साबित करने की जरूरत मुझे नहीं है। मैं आपकी गायें आपको दे दूँगा। मुझे छोड़ दीजिये।" उसने कहा।

"जब तक मुझे यह न बताओगे कि तुमने मुझे कैसे धोखा दिया, मैं तुमको माफ न करूँगा। तुम्हें बताना ही होगा।" राजा ने कहा।

"महाराज! मैं, भ्रम विद्या जानता हूँ। मेरे पास जादू की एक चादर है। उसकी मदद से मैं काली चीज़ को सफेद दिखा सकता हूँ और सफेद को काली। जो नहीं है, उसे दिखा सकता हूँ, जो है उसे गायब कर सकता हूँ। इसमें कोई बड़ी बात नहीं है। अगर वह चादर आपके हाथ आ जाये तो आप भी वह कर सकते हैं।" चोर ने कहा।

"अगर वह चादर तुम मुझे दो तो मैं तुम्हें माफ़ कर दूँगा।" राजा ने कहा। उसका ख्याल था कि उसकी मदद से, वह वहाँ और बड़ी बड़ी डकैतियाँ करवा सकता था और बड़ा हो सकता था।"



"वहाँ जो पहाड़ दिखाई दे रहा है, वहाँ पत्थरों में मैंने उसे छुपाकर रखा है। अगर आप अभी वहाँ जायें तो वह मिल सकती है। आप क्यों फालतू तकलीफ़ उठाते हैं। मेरा नौकर रामू है ही। वह उसके बारे में सब कुछ जानता है। उसे अभी भेजकर चादर मँगाता हूँ। आप थोड़ी देर यहाँ पेड़ों के नीचे आराम कीजिये।" चोर यह कहकर अपनी कुटीर में चला गया।

उसके थोड़ी देर बाद एक बूढ़ा, जिसके सिर के बाल सफेद थे, दाढ़ी सफेद थी, कुटीर में से आया और राजा के आदमियों में से होता हुआ, सामने के पहाड़ की ओर गया।

एक घण्टा हुआ। दो घण्टे हुये। जब गया हुआ आदमी बापस न आया तो राजा ने अपने आदमी अन्दर भेजे।

कुटीर खाली थी। उसमें कोई न था।

"वह चोर, बूढ़े का रूप धारण कर बाहर चला गया है। वह सफेद को काला, काले को सफेद दिखा सकता है। उसके काले बाल, काली दाढ़ी हमें सफेद लगी। हमने उसे बूढ़ा समझा। वह हमारे आँखों में मिट्टी फेंक कर चला गया है। गया तो जाने दो। हम उसकी गायों को ले जायेंगे।" राजा ने अपने आदमियों से कहा।

इस बात में भी राजा ने गलती की। क्योंकि जब उन्होंने जाकर देखा, तो पशुशाला में, आठ गायों के झुण्ड ही थे। एक भी अधिक न थी। वे सब राजा की ही थीं। चोर के पास गायें थी ही नहीं। वह भी बचकर निकल गया।

राजा, लाचार हो, अपनी गायों को झुण्ड को घर हाँककर ले गया।





[६]

[सर्पकेतु के कुछ और सेना के साथ नगर में प्रवेश करने के कारण चन्द्रवर्मा का ब्यूह विफल रहा। वह और सुबाहू, नगर छोड़कर, पहाड़ों की ओर घोड़ों पर भाग निकले। पहाड़ों में शत्रुओं ने उन दोनों को घेर लिया। विवश हो, चन्द्रवर्मा और सुबाहू पहाड़ की तराई में बहनेवाली एक नदी में कूद पड़े। बाद में --]

चन्द्रवर्मा ने नदी में तैरने की कोशिश की। पर नदी के प्रवाह ने उसको इधर उधर धकेला। पर्वत के किनारे खड़े शत्रुओं की बातचीत उसे सुनाई पड़ रही थी। क्या सुबाहू भी मेरे साथ कूदा था कि नहीं? या वह शत्रुओं के हाथ में फँस गया है?

चन्द्रवर्मा इस तरह की उधेड़बुन में नदी में तेजी से बहने लगा। वह तैर न सका। थोड़ी देर में ही वह बुरी तरह थक गया। यह सोच कि वह जिन्दा न बचेगा, उसने अपने को डूबने से बचाने की आखिरी कोशिश की और बेहोशी में आँखें मूँद लीं। वह बहता गया।

चन्द्रवर्मा ने जब आँखें खोलीं, तो चारों ओर सूर्य आकाश के मध्य में था। बड़े बड़े पेड़ोंवाला घना अरण्य था। वह निश्चल जलवाले गढ़े के पास खड़ा था।



वह सौभाग्य से नदी में डूबने से बच गया था। नदी के एक ताल में वह बह आया था। तुरन्त उसे सुबाहू याद आया। चन्द्रवर्मा ने उठकर उसके लिए चारों ओर देखा। उसका कहीं पता न था।

थोड़ी देर में चन्द्रवर्मा को भूख सताने लगी। वह ताल से दूर हटा और एक पेड़ के पास गया जो वहाँ से कुछ दूरी पर था। वन में कुछ पेड़, फलों के बोझ के कारण झुके हुये थे। चन्द्रवर्मा तो भूखा था ही, उसके हाथ जो फल लगे, उन्हें तोड़कर उसने खा लिये, उसे उस समय यह न मालूम था कि वह कहाँ था या वह जङ्गल कितना भयङ्कर था।

भूख मिटाने के बाद चन्द्रवर्मा, अपनी परिस्थिति पर सोचने लगा। यह सौभाग्य की बात थी कि वह शत्रुओं के हाथ से बच निकला था। परन्तु अब वह जहाँ था वह कैसा प्रदेश था? क्या इसमें मनुष्य कहीं हैं कि नहीं? या यह केवल हिंस्र जन्तुओं और भूत प्रेतों का ही निवास स्थल है? इस प्रकार सोचता हुआ चन्द्रवर्मा जङ्गल में निकल गया। वह अभी पेड़ों के नीचे थोड़ी दूर गया था कि जोर से हवा चलने लगी और पेड़ भूमि पर झुक गये। इतने में जोर जोर से शोर होने लगा। शोर इतना भयङ्कर था कि शरीर को कम्पा देता था।

यह दृश्य देखते ही चन्द्रवर्मा पथरा सा गया। पेड़ों की टहनियाँ उसकी ओर इस तरह बढ़ी जैसे किसी के हाथ बढ़ रहे हों और विचित्र आवाज में चिल्लाने लगीं।

वह जिस तरफ मुड़ता उस तरफ टहनियाँ भी मुड़ती। और ऐसा लगता, जैसे वे उसे

पकड़ने का प्रयत्न कर रही हो। चन्द्रवर्मा जान गया कि वह किसी मन्त्रग्रस्त प्रदेश में आ पड़ा था। अब इस सङ्कट से कैसे बाहर निकला जाय? उसने अपनी तलवार निकाल कर उस पर चिल्लाती, झुकती टूटती टहनियों को एक चोट में काट दिया। उसी समय किसी का जोर से कराहना सुनाई पड़ा। ऐसा लगा जैसे कोई ज्वालामुखी फूट पड़ा हो, लहू चलने लगी। फुँफकारें सुनाई पड़ने लगीं।

चन्द्रवर्मा काँप उठा। पर जाने उसमें कहाँ से असाधारण साहस भी आ गया। वह तलवार लेकर उस तरफ बढ़ा, जिस तरफ से फुँफकारों की ध्वनि और लहू आ रही थी। उसे पेड़ों के नीचे, तीन सिरोबाला साँप आता दिखाई दिया। वही जीभ निकालकर फुँफकारता, उसकी ओर आ रहा था। चन्द्रवर्मा ने अपनी तलवार उठाई। इतने में जङ्गल में से विकृत कण्ठस्वर में, प्रेम भरे ये वाक्य सुनाई पड़े।

"बेटा, काल सर्प, उस मनुष्य को न मारो। वह कष्टों से बचकर हमारे पास आया है। वह अतिथि के समान है। सकुशल उसको मेरे पास ले आओ।"





यह सुनते ही तीन सिरोंबाला सर्प चन्द्रवर्मा से कुछ दूरी पर ही खड़ा हो गया। जङ्गल के पेड़ चुप हो गये। लहू रुक गई। चन्द्रवर्मा आश्चर्य से सर्प की ओर देखने लगा।

कालसर्प ने एक साथ अपने तीनों सिरों को इसतरह उठाया मानों यह सूचित कर रहा हो कि चन्द्रवर्मा उसके पीछे चले।

और वह जङ्गल में चला गया। चन्द्रवर्मा के सामने और कोई मार्ग न था। उस अरण्य को किसी ने मन्त्र शक्ति से अपने वश में कर रखा था। वह आवाज किसी आदमी की ही थी। उसे उस तीन सिरोंवाले सर्प के पीछे जाना ही होगा। अगर उसने भागने की कोशिश की तो वह उसी क्षण मारा जा सकता था।

चन्द्रवर्मा यह सोचता, तलवार को और जोर से पकड़कर कालसर्प के पीछे पीछे चलने लगा। कुछ दूर चलने के बाद, सामने पेड़ों के नीचे एक बड़ी विकृत आकृति दिखाई दी। गिद्ध का सिर, पंख और शेर का शरीर। साँप ने उसके पास जाकर, अपने तीनों सिर झुकाकर जोर से फुँफकारा। तुरन्त उस विकृत आकृति के दो भाग हो गये और वे दोनों ओर गिर गये। तुरन्त उसको एक खण्ड़हर दिखाई दिया। उसके दरवाजे में सफेद बालोंवाली, झुर्रियों बाली, पीठ झुकी एक स्त्री चन्द्रवर्मा को दिखाई दी।

चन्द्रवर्मा के मुख से बात न निकली। उस स्त्री को देखते ही, उसने सोचा कि वह कोई भूत थी या स्त्री। इतने में उस स्त्री ने अपने हाथ की लकड़ी को दो-तीन बार जोर से भूमि पर मारा और कहा-"काल सर्प, अब तुम जा सकते हो।"

फिर उसने चन्द्रवर्मा की ओर मुड़कर कहा-"बेटा, आओ। घर के अन्दर

आओ। मैं तुम्हारे लिये कितने दिनों से प्रतीक्षा कर रही थी।"

"मेरे लिये?" चन्द्रवर्मा ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ, बेटा, तुम्हारे लिये ही। मुझे तुम्हारी बहुत सहायता करनी है, और तुम्हें मेरी बहुत सहायता करनी है।" उस स्त्री ने कहा।

यह सुनकर चन्द्रवर्मा ताड़ गया कि वह स्त्री ही थी, पर मान्त्रिक थी। इस स्त्री मान्त्रिक को मेरे बारे में कैसे मालूम? क्या मालूम है?"

"तुम्हें कैसे मालूम कि मैं कौन हूँ? तुम्हारा नाम क्या है?" पूछता चन्द्रवर्मा उस स्त्री की ओर चलने लगा।

"मेरा नाम कपालिनी है। क्योंकि मैं तुम्हें कोई हानि नहीं पहुँचाने जा रही हूँ इसलिये तुम उस तलवार को म्यान में रख लो। अगर मैने तुम्हारा बुरा भी करना चाहा तो वह तलवार तुम्हारी रक्षा न कर सकेगी। तुमने जङ्गल में घुसते ही मेरा प्रताप देख लिया होगा। मैंने उन मूक वृक्षों से भी बुलवाया था। सचमुच उन्होंने ही तेरा रास्ता रोका





था।" कपालिनी ने धीमे धीमे उसे समझाते हुये कहा।

चन्द्रवर्मा जान गया कि वह असहाय था और विचित्र स्थिति में था। उसने तलवार म्यान में रखकर कहा-"कपालिनी, मैं वह आभागा हूँ जो राज्य, मित्र, सब कुछ खोकर इस जङ्गल में आया है। मैं तुम्हें कोई हानि नहीं पहुँचाने जा रहा हूँ। मेरा विश्वास है कि तुम भी मेरा बुरा न करोगी।"

"मैं और तुम्हें हानि पहुँचाऊँगी?" उसने चन्द्रवर्मा की ओर आश्चर्य से देखकर कहा-"चन्द्रवर्मा, जैसा मुझसे बन सकेगा, मैं भरसक तुम्हारी सहायता ही करूँगी। परन्तु मेरे सहायता करने से पहले तुम्हें मेरी सहायता करनी होगी।"

जब कपालिनी ने उसको उसके नाम से पुकारा तभी चन्द्रवर्मा जान गया कि वह स्त्री मान्त्रिक शक्तिशालिनी थी। शायद वह उसके बारे में सब कुछ जानती थी। वह यह भी शायद बता सकेगी कि तब वीरपुर में क्या हो रहा था। उसका सेनापति धीरमल्ल, और सुबाहू कहाँ थे। प्रजा कैसी थी?

चन्द्रवर्मा, निर्भय हो कपालिनी के पास गया। वह उसको सादर घर के अन्दर ले गई। दीवारों पर बहुत से जन्तुओं के सिर और मनुष्यों के कपाल लटक रहे थे। दीवार की खिड़की के पास, एक मेज पर एक अद्भुत काँच का गोला चम चमा रहा था।

कपालिनी ने चन्द्रवर्मा को काँच के गोलेवाले मेज के पास, एक गद्दा दिखाते हुए कहा-"चन्द्रवर्मा, वहाँ बैठो। यह मेरा सौभाग्य है कि तुम नदी में बिना डूबे यहाँ तक पहुँच सके। जो काम में करना चाहती हूँ, वह तुम ही कर सकते हो।

और कोई नहीं कर सकता।" कपालिनी ने कहा।

चन्द्रवर्मा ने काँच के गोले के पास गद्दे पर बैठते हुए कहा-"कपालिनी, यह गोला बड़ा विचित्र मालूम होता है। इसके उपयोग के बारे में मैंने जरूर कुछ सुन रखा है। क्या इसमें मनुष्यों के भूत, वर्तमान, भविष्य के बारे में जाना जा सकता है?"

चन्द्रवर्मा का प्रश्न सुनते ही, लम्बी साँस छोड़कर उसने कहा-"बेटा चन्द्रवर्मा, जैसे तुम सोच रहे हो, यदि यह काँच का

गोला सचमुच भविष्य भी दिखाता, तो मुझे इतना निराश न होना पड़ता। यह गोला केवल भूत और वर्तमान ही दिखाता है।

इसीलिए मैं एक कष्टसाध्य कार्य करने के लिए तुम्हारी मदद चाहती हूँ और तुम ही यह कर सकते हो।"

"क्या वह कार्य उतना कष्टसाध्य है?" चन्द्रवर्मा ने पूछा।

"हाँ, कष्टसाध्य है। पर असम्भव नहीं है। यहाँ से सौ मील दूर, शंखनाद नाम का एक मान्त्रिक है। तुझे उसके घर में घुसकर मेरे लिए एक बस्तु लानी होगी। अगर वह वस्तु मुझे मिल गई तो मैं एक हज़ार



साल, और पूर्ण स्वास्थ्य, सुख और यौवन के साथ जीऊँगी। नहीं तो...."

कपालिनी अपना वाक्य पूरा किये ही, हिचकियाँ बाँधकर, आँसू पोंछती रोने लगी। चन्द्रवर्मा को उस समय, उस पर बड़ी दया आई। अगर उसके मन में कहीं कोई सन्देह था कि वह उसको मौका देखकर मार डालेगी तो वह सन्देह उसके दुख को देखकर जाता रहा।

"कपालिनी, मैं तुम्हारी भरसक सहायता करूँगा। परन्तु तुझे पहले मेरी थोड़ी सहायता करनी होगी। मेरा वीरपूर नगर

इस समय किस हालत में है? मेरा सेनापति धीरमल्ल, और सेवक सुबाहू क्या जीवित हैं? यह इस गोल में देख कर बता सकती हो?" चन्द्रवर्मा ने उससे पूछा।

कपालिनी मुस्कुराती हुई उठी। दीवार पर लटकी, एक लम्बी मनुष्य की हड्डी ली। उसे लेकर, काँच के गोले के पास जाकर कोई मन्त्र जपती, हड्डी से गोला छुआ, उसने कहा-"यह लो, तुम्हारा वीरपुर नगर।"

भयङ्कर अग्नि धधक रही थी। लपटें आकाश में उठ रही थीं। हाहाकार करते, लोग गलियों में अन्धाधुन्ध इधर उधर भाग रहे थे। बीरपुर को इस हालत में देखकर चन्द्रवर्मा जोर से चीखा। उसने आँखें मूँद ली। उसने कहा-"कपालिनी, यह काफी है। मैं यह दृश्य नहीं देख सकता।" तुरन्त वह भयङ्कर दृश्य अदृश्य हो गया।

"यह देखो, तुम्हारा सेनापति घीरमल्ल।" कहते हुए उसने गोले को फिर हड्डी से छुआ।

चन्द्रवर्मा ने आँखें खोलकर आतुरता से गोले में देखा। घाटी, टीले, बड़े बड़े पहाड़। सेनानी धीरमल्ल अपने आश्विकों के साथ तेजी से जा रहा था। उसको चारों तरफ से घेरती सर्पकेतु की सेना पास आ रही थी। धीरमल्ल ने अपना घोड़ा रोका। मुड़कर उसने अपने सैनिकों से कुछ कहा, फिर तलवार निकालकर अपने घोड़े को शत्रुओं की ओर बढ़ाया।

"यह आज सवेरे हुआ था। उसके बाद धीरमल्ल का क्या हुआ यह तेरे लिए देखना ठीक नहीं है।" कहकर कपालिनी ने हड्डी से गोले को छुआ, तुरत वह दृश्य समाप्त हो गया।

चन्द्रवर्मा हैरान हो काँच के गोले की ओर देखता रहा।

(अभी और है)



राजधर्म

किसी जमाने में एक धर्म परायण राजा रहा करता था। एक रात उसको कहीं बाहर आग दिखाई दी। उसने पास जाकर देखा, वहाँ एक स्त्री कढ़ाई में पानी गरम कर रही थी। पास में ही दो दुबले बच्चे थे।

"इस समय, रात में क्यों पानी गरम कर रहे हो?" राजा ने उससे पूछा।

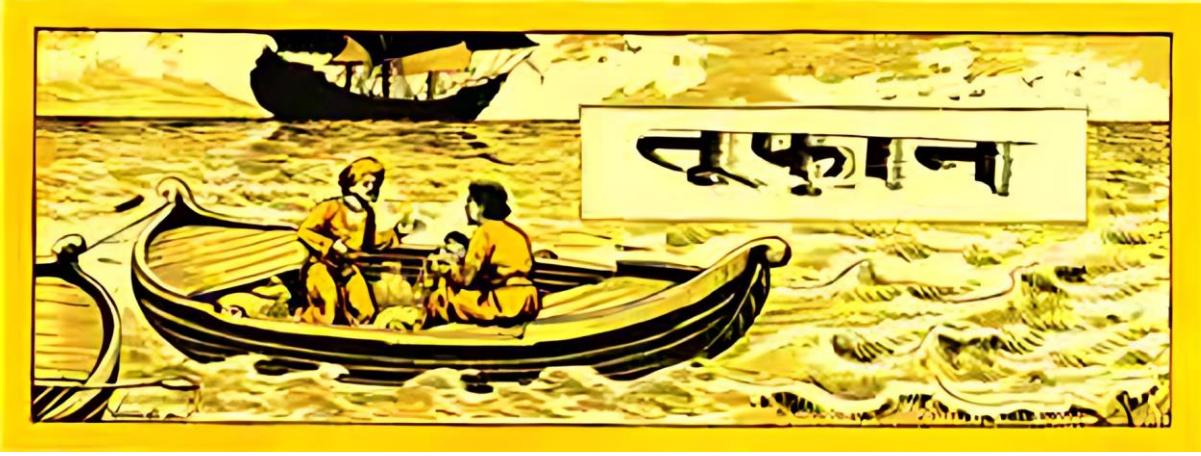
"क्या करूँ महाराज! सरदी के दिन हैं। बच्चों के लिए चुल्लू भर माण्ड भी नहीं है। इसलिए उन्हें पिलाने के लिए पानी गरम कर रही हूँ। क्या चित्रगुप्त इस देश के राजा से न पूछेगा कि हमें क्यों इतने कष्ट दे रहा है।" उसने कहा।

राजा ने कुछ न कहा। वह अपने नौकर के साथ घर गया। उसने एक बोरी भर चावल लिये, नौकर से कहा-"अरे इसे मेरे सिर पर चढ़ा। उस गरीब को दे आयेंगे।"

"मैं उठा लाऊँगा महाराज।" नौकर ने कहा।

"कल क्या मेरे पाप भी तुम ढोओगे?" राजा ने नौकर से पूछा।





किसी जमाने में उदयवर्मा नागपुर का सामन्त राजा था। उसे मन्त्र-शास्त्र पर बहुत मोह था। वह दिन रात भिन्न-भिन्न भाषाओं में मन्त्र-शास्त्र पर लिखी गई स्तकें पढ़ता रहता ताकि वह एक बड़ा मान्त्रिक बन सके।

उदयवर्मा का भाई शूरवर्मा था। क्योंकि राजा हमेशा अध्ययन में व्यस्त रहता इसलिए शूरवर्मा ही सारा राज्य-कार्य देखता। राजा से सम्बन्धित औपचारिक विधियों को करवाता।

थोड़े दिनों बाद शूरवर्मा के मन में लालच पैदा हुआ। इसलिए उसने अपने भाई और उसकी तीन वर्ष की लड़की, चन्द्रसेना को मारकर, गद्दी पर स्वयं बैठना चाहा। इस षड्यन्त्र में चालुक्य राजा ने शूरवर्मा की मदद की।

परन्तु उदयवर्मा को मार देना उतना आसान काम न था। नागपुर की प्रजा को उसपर बहुत अभिमान था। अगर उनको यह मालूम हो गया कि गद्दी हथियाने के लिये शूरवर्मा ने अपने भाई को मरवा दिया है, तो वह उसको जिन्दा न छोड़ेगी। इसलिए अपने एक नौकर, धीरसिंह को बुलाकर शूरवर्मा ने कहा-"तुम मेरे भाई और उनकी लड़की को बीच समुद्र में छोड़ आओ। उन्हें एक नौका में ले जाओ और एक ऐसी नौका में छोड़ आना, जिस में न पतवार हो न पाल ही।"

शूरवर्मा का ख्याल था कि ऐसा करने से, उसका भाई, और उसकी पुत्री या तो तूफान में मर जाएँगे, नहीं तो भूखे प्राण छोड़ देंगे। परन्तु धीरसिंह अच्छे

हृदय का था। इसलिए धीरसिंह ने जब उदयवर्मा और उसकी लड़की को समुद्र में छोड़ा, तो वह नौका में कई दिनों की रसद, और उसके मन्त्र-शास्त्र के ग्रन्थ भी छोड़ता गया।

धीरसिंह की दया से, उदयवर्मा और उसकी लड़की बेमौत न मरे, परन्तु कुछ दिनों बाद वे एक निर्जन द्वीप में पहुँचे।

यह एक विचित्र द्वीप था। कभी उस द्वीप में एक जादूगरनी राक्षसी रहा करती थी। उसने अपनी मन्त्रशक्ति के कारण कई भूतों, पिशाचों को अपने वश में कर रखा था और वह उनसे नौकरी करवाया करती थी। जिन भूतों ने उसकी बात न मानी थी, उनको उसने उस द्वीप के पेड़ों से बँधवा दिया था। उदयवर्मा के उस द्वीप में पहुँचने के कुछ दिन पहले ही वह राक्षसी मर गई थी। उसका लड़का, मन्द एक अरक्षित पक्षी के रूप में, उस द्वीप में फिरा करता।

उदयवर्मा ने द्वीप में पैर रखते ही अपनी मन्त्रशक्ति से बन्धे हुये भूतों को विमुक्त कर दिया। उन भूतों का सरदार, इल्वेलु, उसी द्वीप में



रहकर, उदयवर्मा की हर तरह से मदद करने लगा।

कुछ दिनों बाद, उदयवर्मा को मन्द मिला। वह लंगूर से भी अधिक बदसूरत था और बहुत आलसी था। उदयवर्मा ने उसको अपने साथ रखा और उसको बातचीत करना सिखाया। उसने एक गुफा में अपना बसेरा किया। उस गुफा में ही उन्होंने अपनी सुविधा के लिए कई कमरे बनवाये।

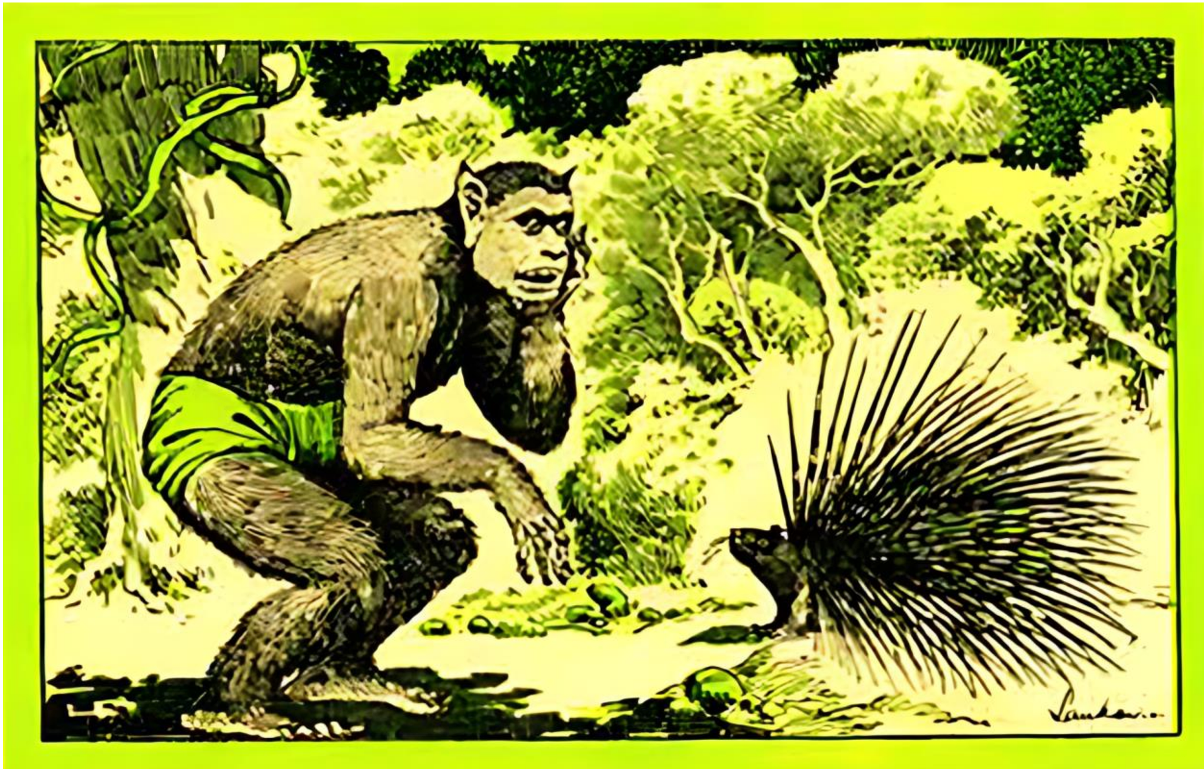
उदयवर्मा के लिए लकड़ियाँ वगैरह, बटोर कर लाना मन्द का काम था। क्योंकि वह बड़ा आलसी था इसलिए

उसे डरा धमकाकर उससे काम लेना, इल्वेलु का काम था।

मन्द को सताने में इल्वेलु बड़ा मजा लेता था। इल्वेलु भूत होने के कारण सिवाय उदयवर्मा के किसी और को न दिखाई देता था। जब कभी मन्द काम में ढीलापन दिखाता तो उसको बिना दीखे वह उसे चूँटी काटता। नहीं तो कीचड़ में धकेलता। नहीं तो सेई का रूप धारण कर, उस पर कूदकर, उसे डराता।

इस तरह कई वर्ष बीत गये। चन्द्रसेना बड़ी हो गई। अब उसका सौन्दर्य वर्णनातीत था। मगर क्या फायदा? सिवाय उसके पिता के वहाँ उसको कोई देखनेवाला मनुष्य न था। पिता ने स्वयं उसको वह सब विद्या सिखाई, जिसका सीखना उसके लिए आवश्यक था।

इस समय में, उदयवर्मा भी बहुत बड़ा मान्त्रिक हो गया। इल्वेलु की सहायता से उसने पञ्चभूतों पर काफी अधिकार पा लिया था। एक दिन उसने समुद्र में बहुत बड़ा तूफ़ान पैदा किया। उस तूफान में पिता और पुत्री ने एक जहाज़ को धक्का खाते आते देखा। यह जानकर कि उस



तूफान को उसके पिता ने ही पैदा किया था, चन्द्रसेना ने पूछा-"क्यों पिताजी, क्या उस जहाज़ के लोगों को पानी में डुबो दोगे?"

उदयवर्मा ने चन्द्रसेना को अपनी सारी कहानी सुनाकर कहा-"बेटी, उस जहाज़ में तुम्हारे चाचा, चालुक्य राजा, जयपाल,

उसका लड़का जयकेतु, हमें समुद्र में छोड़कर जानेवाला, धीरसिंह आदि, हैं। उनको यहाँ बुलवाने के लिए ही मैंने यह तूफ़ान पैदा किया है। डरो मत! उनमें से कोई भी न मरेगा। उनके जहाज़ को भी किसी प्रकार की हानि न होगी।"

फिर इल्वेलु ने आकर उदयवर्मा से कहा-"महाराज, जैसे आपने कहा था, वैसे मैंने कर दिया है। जहाज का हर व्यक्ति, अपने अपने रास्ते द्वीप में पहुँच गया है। सब यही सोच रहे हैं कि सिवाय उसके हर कोई डूब गया है। जहाज़ बन्दरगाह में सुरक्षित है। परन्तु वह किसी को दिखाई नहीं देगा, इस तरह हमने उसे रख दिया है।"

"अभी थोड़ा काम और बाकी है। उसके होते ही, मैं तुम्हें पूरी आजादी दे दूँगा। पहले जयकेतु के





पास जाकर उसे यहाँ लाओ।" उदयवर्मा ने कहा।

इल्वेलु जयकेतु के समीप गया। चालुक्य राजा का लड़का जयकेतु शोकातुर हो, एक जगह बैठा सोच रहा था कि उसके सब लोग समुद्र में डूब गये थे, और वह अकेला उस निर्जन वन में आ लगा था, उस समय उसको एक गीत सुनाई दिया। यह गीत इल्वेलु ही गा रहा था।

जयकेतु ने गीत सुनकर पीछे मुड़कर देखा। उसे कोई मनुष्य नहीं दिखाई दिया। इसलिए वह उठकर उस तरफ चल पड़ा जिस तरफ से गीत सुनाई दे रहा था और चन्द्रसेना को देखकर हैरान रह गया। उसने सोचा वह स्त्री नहीं कोई अप्सरा थी।

"हे इस द्वीप की परिपालिनी देवी, मुझ पर कृपा करो।" जयकेतु ने कहा।

"मैं देवी नहीं हूँ। मामूली स्त्री हूँ।" यह कहकर चन्द्रसेना ने अपनी कहानी सुनाई। मगर उदयवर्मा ने बीच में आकर गुस्सा दिखाते हुए पूछा-"कौन हो तुम? कोई भेदिये मालूम होते हो! मेरे साथ आओ। तुम्हें अपने पास रख कर तुमसे हर काम करवाऊँगा।"

"पहले मुझे हराओ फिर मुझे गुलाम बनाना।" जयकेतु, अपनी तलवार निकाल कर उस पर कूदा, इतने में उदयवर्मा ने जादू का डण्डा घुमाया और जयकेतु का उठा हाथ उठा ही रह गया।

"पिताजी, आप इस युवक पर क्यों यों गुस्सा करते हैं? उसने कुछ नहीं किया है। कुछ करेगा भी नहीं। इसके लिए मैं जिम्मेवार हूँ।" चन्द्रसेना ने अपने पिता से कहा।

"लड़के का नाक नक्शा, रङ्ग रूप देखकर लगता है, भ्रम में पड़ गई हो। इस संसार में इससे भी बहुत सुन्दर बहुत से लोग हैं। तुम ये बातें नहीं जानते। जाने दो!"

"इससे अधिक सुन्दर लोग हो सकते हैं, होंगे, पर मेरा उनसे क्या वास्ता?" चन्द्रसेना ने कहा।

असली बात तो यह थी कि प्रथम दर्शन में ही चन्द्रसेना को जयकेतु पर प्रेम हो गया था। होश सम्भालने के बाद उसने जो दूसरा आदमी देखा था, वह जयकेतु ही था। उसको देखने से पहले चन्द्रसेना का ख्याल था कि सब लोग उसके पिता की तरह ही होते होंगे। कठोर मुँह, बड़ी बड़ी दाढ़ी, आदि। इसलिए उसको जयकेतु ही कामदेव-सा दिखाई दिया।

जयकेतु ने कई सुन्दरियों को देखा था। पर वह चन्द्रसेना को देखते ही उसपर मुग्ध हो गया। उतनी सुन्दर लड़की को उसने कहीं भी, कभी भी न देखा था।

उदयवर्मा भी यही चाहता था कि वे दोनों एक दूसरे से प्रेम करें। परन्तु उसके प्रेम की परीक्षा करने के



लिए अपनी मन्त्रशक्ति से उसको वश में करके, लकड़ो को इकट्ठा करने का कठिन काम दिया।

वह राजकुमार था, लाड़ प्यार से पाला पोसा गया था। इसलिए उसे यह काम बहुत भारी लगा। वह जल्दी जल्दी लकड़ इकट्ठे न कर सका। इतने में चन्द्रसेना ने उसके पास आकर कहा-"पिता जी ध्यान से पढ़ रहे हैं। ज्यादा तकलीफ न उठाओ, आराम से करो।"

"यह काम तो जल्दी जल्दी करने से भी खतम होता नहीं लगता, फिर धीमे



अधिक सुन्दर स्त्री संसार में कहीं नहीं देखी है।"

"मैं सिवाय, तुम्हें और पिताजी के किसी को नहीं जानती हूँ। फिर भी मैं तुम्हारे सिवाय किसी और से शादी नहीं करूँगी।" चन्द्रसेना ने कहा।

इन दोनों का सम्भाषण, उदयवर्मा ने सुना। सुनकर वह खुश हुआ। उसने उनके सामने आकर कहा-"मैंने तुम्हारी बातें सुन ली हैं। डरो मत। मुझे विश्वास हो गया है कि तुम दोनों को आपस में एक दूसरे पर प्रेम है। इसलिये मैं तुम्हारे विवाह पर आपत्ति नहीं करूँगा।" वह यह कहकर अलग चला गया। फिर उसने इल्वेलु को बुलाकर पूछा-"मेरा भाई और जयपाल कहाँ हैं?"

"हुजूर! मैंने अपनी माया से उनको खूब डरा दिया है। द्वीप में भटक भटक कर जब वे एक जगह बैठे और भूख से तड़पने लगे तो मैंने ऐसी माया की कि उनको सामने भोजन दिखाई देने लगा, पर जब उन्होंने खाने की कोशिश की तो वह गायब हो गया। मैंने एक बड़े पक्षी के रूप में प्रत्यक्ष होकर कहा-"तुम

धीमे काम करने से कैसे खतम होगा?" जयकेतु ने कहा।

"तुम थोड़ी देर आराम करो, मैं तुम्हारे बदले लकड़ इकट्ठे कर दूँगी।" चन्द्रसेना ने कहा।

चन्द्रसेना के आने से काम बिगड़ गया। दोनों बैठकर गप्पें मारने लगे। जयकेतु ने पहले उसका नाम पूछा। यद्यपि पिता ने उसे रोका था तो भी उसने उसको अपना नाम बता दिया। फिर जयकेतु ने उससे कहा-"मैं चालुक्य राजा का लड़का हूँ। पट्टाभिषेक होते ही मैं तुझे अपनी रानी बना लूँगा। मैंने तुमसे

पापी हो। विचारे उदयवर्मा और उसकी नादान लड़की को समुद्र में फिकवानेवाले दुष्टो।" मेरे यह चिल्लाते ही दोनों जोर जोर से रोने लगे। वे पछतावा करने लगे। अब उनको और दण्ड देना ठीक नहीं है।" इल्वेलु ने कहा।

उदयवर्मा ने हँसकर कहा-"तुम जैसे हृदय हीन पिशाच को ही अगर उन पर दया आ गई तो क्या मैं हृदयवाला मनुष्य उन्हें सताऊँगा? उन्हें तुरन्त यहाँ लाओ।" जयकेतु की तरह इल्वेलु का सङ्गीत सुनकर, शूरवर्मा, जयपाल, धीरसिंह भी उस दिशा में चले, जहाँ उदयवर्मा था। पर उनमें से एक भी उन्हें न पहचान सका।

उदयवर्मा ने धीरसिंह के पास जाकर उसको गले लगा लिया। उसने उसे यह भी बताया कि वह कौन था। "तुम्हारी कृपा से ही मैं प्राण बचाकर यहाँ पहुँच सका।" यह पता लाते ही कि वह उदयवर्मा है शूरवर्मा और जयपाल ने उसके पैरों पर पड़कर उससे माफ़ी माँगी।

"तुम शोक न करो। पश्चताप हर पाप का निवारण कर देता है। इतने दिन जो मैंने इस निर्जन वन में



बिताये हैं, उनका भी फायदा होने वाला है। मेरी लड़की तुम्हारे लड़के से शादी करने जा रही है।" उदयवर्मा ने जयपाल से कहा।

"मेरा लड़का? क्या जयपाल मरा नहीं है? जीवित है? कहाँ है वह? क्या भाग्य है!" जयपाल ने आनन्दपूर्वक कहा।

"आइये दिखाता हूँ।" कहकर उदयवर्मा उनको अपनी गुफा में ले गया। वहाँ उसने शतरञ्ज खेलते हुये चन्द्रसेना और जयकेतु को दिखाया। अपने पिता को जीवित पा, जयकेतु बड़ा खुश हुआ।

"बहुत-से कष्ट दूर हो गये हैं। परन्तु इस निर्जन प्रदेश से घर वापस जाने के लिए न जहाज रह गया है, न खलासी ही। यही एक कमी है।" जयपाल ने कहा।

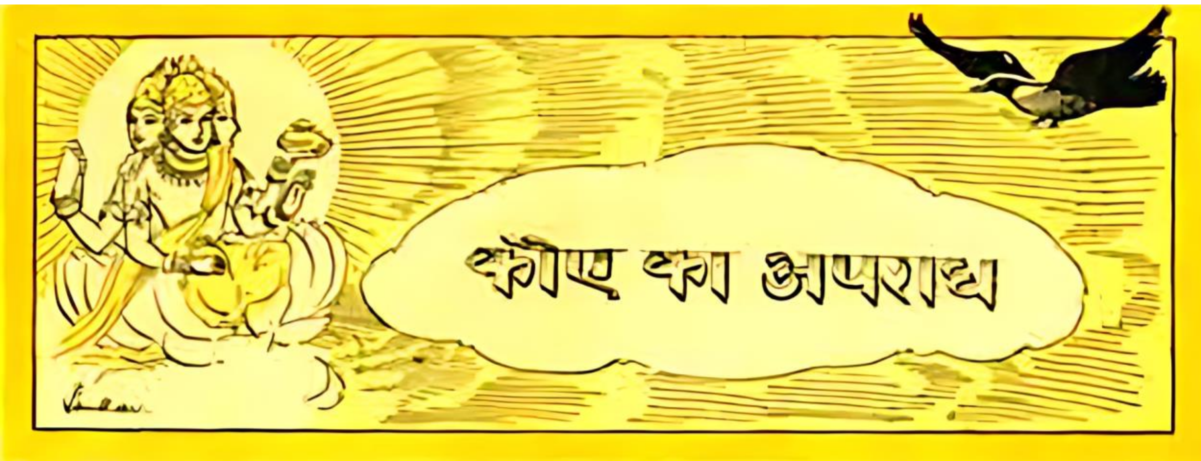
"तुम्हारे जहाज को कोई हानि नहीं पहुँची है। खलासी भी उसमें हैं। जब तुम जाना चाहो तब जा सकते हो।" उदयवर्मा ने कहा।

"तो, चलो, सब मिलकर ही चलें। देर किस बात की है?" जयपाल ने कहा।

उययवर्मा ने इल्बेलु को छोड़ते हुये कहा-"तुम अपने पिशाचों को लेकर जहाँ जाना चाहो वहाँ चले जाओ।" अपनी मन्त्र शास्त्र की पुस्तकों को उसी द्वीप में एक जगह गढ़ा खोदकर उसमें रखकर, वह वहाँ से निकल पड़ा।

थोड़े दिनों बाद वे अपने देश पहुँच गये। उदयवर्मा नागपुर का फिर राजा बन गया। उसके थोड़े दिनों बाद चालुक्य के राजसिंहासन पर जयकेतु बैठा। उसका चन्द्रसेना के साथ बड़े धूम-धाम से विवाह हुआ।





ब्रह्मा के भूमि, आकाश, भूमि पर रहने वाले जीव, नवधान्य आदि के बनाने के बाद भी मनुष्य सुख से रह न सके। उनको ब्रह्मा की सृष्टि में कुछ त्रुटियाँ दिखाई दीं। ऋतुओं के परिवर्तन से उनको विघ्न पहुँचने लगे। उनके आहार के काम आने वाले पौधे क्योंकि नष्ट हो जाते थे, इसलिए उनको हर साल बोना पड़ता। मनुष्यों में भेदभाव बढ़े। कुछ धनी हो गये, कुछ गरीब। धनी गरीबों को सताने लगे।

इसलिए मनुष्यों ने ब्रह्मा के पास दूत भेजने का निश्चय किया। इस कार्य के लिए कौवे को निर्वाचित किया। "कौवे! तुम ब्रह्मा के पास जाकर ये वर माँग कर लाओ। इतनी ऋतुएँ नहीं हो, हमेशा बसन्त ऋतु ही रहे। बाढ़, अनावृष्टि आदि न हों। जो पौधे एकबार लगा दिये गये वे हमेशा फल देते रहें। मनुष्यों में घनी और गरीब का भेदभाव न हो। सब समान हो, इस तरह के वर लाओ।"

उनके निश्चय के अनुसार, कौआ उड़ा। ब्रह्मा के पास गया। ब्रह्मा के दर्शन करके उसने मनुष्यों की इच्छाएँ बतलाई। त्रह्मा ने सब सुनकर कहा-"ये इच्छाएँ ठीक ही हैं। मनुष्यों द्वारा माँगे हुए बर मैं तुम्हें दे रहा हूँ। तुम जाकर उन्हें ये दे देना। रास्ते में उन्हें किसी को देकर व्यर्थ न कर देना। नहीं तो वे मनुष्यों तक न पहुँच पायेंगे।"

कौआ, अभिमान से फूला जा रहा था। यह ब्रह्मा से विदा लेकर, खुशी खुशी भूलोक की ओर चला। "सृष्टि की त्रुटियों को ठीक करने के लिए मेरे पास अद्‌भुत वर हैं।" यह सोचकर, वह थकान दूर करने के लिए एक पत्थर पर जा बैठा।

पूर्णा श्रीवास्तव

"ओ कौवे भाई! तुम्हारी शक्ल से लगता है कि तुम बहुत ही खुश हो। क्या बात है?" पत्थर ने पूछा। कौवे ने कोई जवाब न दिया। अगर वह पत्थर से गप्पें शुरु करता तो उसे ब्रह्मा के दिये हुए वरों के बारे में भी बताना पड़ता।

कौआ चुप था, पत्थर ने पूछा-"अरे कौवे भाई! मैं तो गरीब हूँ, मुझसे बातें करने के लिए क्यों घबराते हो? मेरे पास क्या है? न घर है, न खाना है, न कपड़ा है, न कुछ है। धूप में सूखता हूँ, पानी में भीगता हूँ, हम जैसों से भी क्यों नहीं तुम बातें करते हो?"

यह सुन कौवे ने कहा-"देख, पत्थर, मैं ब्रह्मा से जो वर ला रहा हूँ उन में से एक तेरे सब कष्ट दूर कर देगा। भूमि पर अब इतनी ऋतुएँ नहीं होंगी, एक ही ऋतु होगी, और वह भी बसन्त। अब से तुझे वर्षा, गरमी, सर्दी, नहीं सतायेंगे।"

ब्रह्मा का दिया हुआ वह वर यों पत्थर को मिल गया। इसलिए, तब से लेकर अब तक पत्थर ऋतुओं के परिवर्तन से प्रभावित नहीं होते। वे सर्दी में न काँपते हैं, न गरमी में पसीना ही बहाते हैं। उन्हें जुकाम भी नहीं होता।



उसके बाद, पंख फड़फड़ाता कौआ उड़ा और एक पौधे पर जा बैठा।

"क्यों, कौवे भाई, किसी बड़े काम पर जाते मालूम होते हो? क्या बात है?" पौधे ने पूछा। कौवे ने कोई जवाब न दिया।

"मैंने बात छेड़ी और तुमने गाल फुला लिये। क्यों इतना घमण्ड करते हो? इसीलिए न कि साल के खतम होने पर मैं भी खतम हो जाऊँगा। मुख्य स्नेह है, आयु नहीं। क्यों, क्या सोच रहे हो?" पौधे ने पूछा।

यह सुनकर, कौवे ने कहा-"देख, पौधे में ब्रह्मा के पास से एक वर ला रहा हूँ, जो तेरे काम आ सकता है। अब से तेरा जीवन एक साल का न होगा। बहुत दिन जिओगे। और जिन्दगी भर फल दोगे। फूल दोगे।"

यह वर यों पौधे को मिल गया। वह कालक्रम से पेड़ हो गया। तब से लेकर अब तक, पेड़ों के एक बार बोये जाने पर वे कई साल तक फूल फल देते आ रहे हैं।

अब कौवे को न सूझा कि क्या करे। ब्रह्मा के दिये हुए वरों में दो वर यों चले गये। अगर उसने मनुष्यों से यह कहा तो वे उसे जिन्दा न छोड़ेंगे। इसलिए, बाकी वर उसने अपने ही लिए रख लिये। और मनुष्यों के पास जाकर उसने कहा-"ब्रह्मा ने तुम्हारे माँगे हुए वर नहीं दिये हैं।" उसने यों झूठ बोला।

यह पता लगते ही ब्रह्मा ने कौवे को क्षुद्रजीवी होने का शाप दिया। इसलिए यद्यपि कौओं में कोई भेदभाव नहीं है, तो भी वे क्षुद्र माने जाते हैं। उनको देखकर मनुष्य शृणा करते हैं। उन्हें कोई नहीं पालता।





नवरस

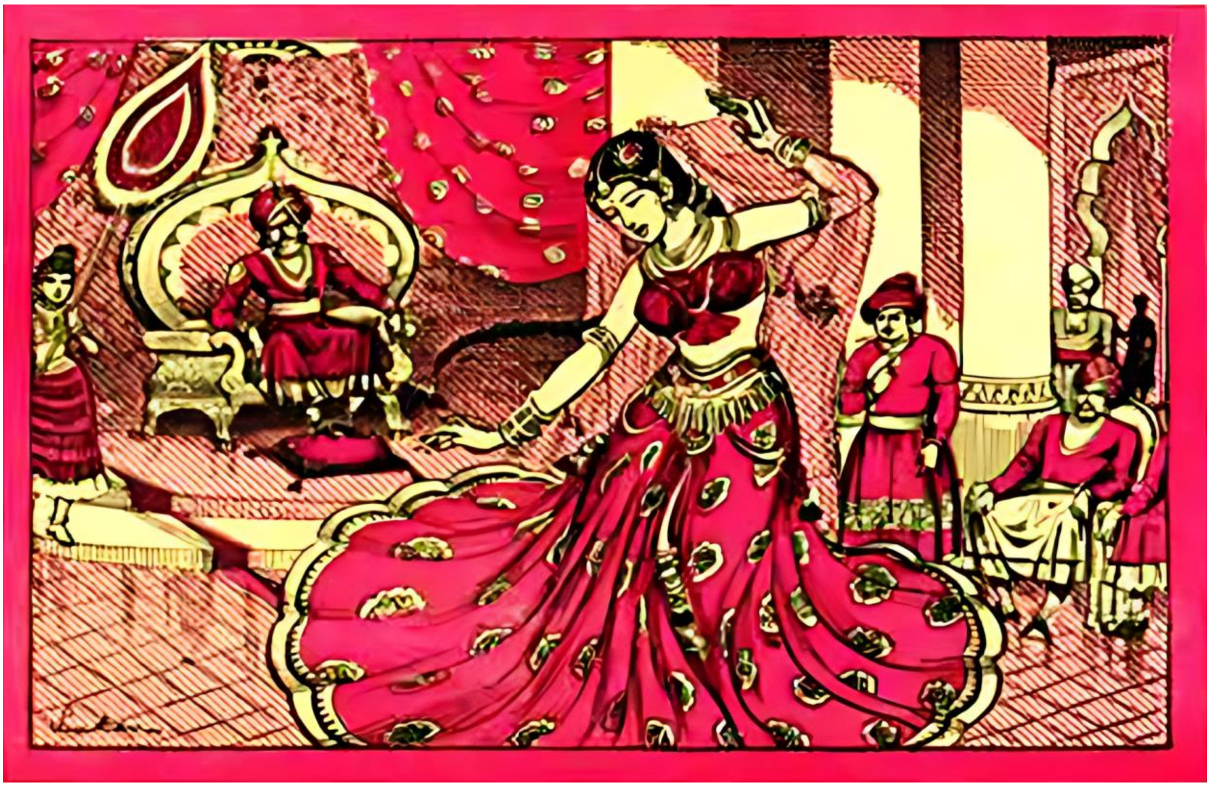
विक्रमार्क ने अपना हठ न छोड़ा। वापस पेड़ के पास जाकर, शव उतारकर, कन्धे पर रख, चुप-चाप श्मशान की ओर चला। तब शव में स्थित बेताल ने कहा-"राजा! तुमको तो बिलासों में डूबे रहने चाहिये था। तुमने क्यों अपने ऊपर वह काम ले लिया, जो कठोर तपस्या करनेवाले महामुनि लेते हैं? यह सचमुच प्रशंसनीय विषय है। कलाओं में, जो नवरस व्यक्त कर पाता है, वह ही वस्तुतः रसिक है। यह दिखाने के लिए मैं, रम्भ और कुम्भ नाम के विदूषकों की कहानी सुनाता हूँ।" वह यों कहानी सुनाने लगा।

वैशाली नगर के चन्द्रसेन महाराजा की नौकरी में रम्भ और कुम्भ नाम के दो विदूषक थे। उनकी बातें बड़ी

चमत्कारपूर्ण होती थीं। अगर मामूली लोगों को भी उनकी शक्लें दिखाई देतीं तो वे खूब हँसते। जिस दिन वे दरबार में हाजिर होते, उस दिन हँसते हँसते दरबारियों के पेट में दर्द हो जाती। कुछ भी राज कार्य न हो पाता।

महाराजा चन्द्रसेन की नौकरी में कर्णिका नाम की एक नई नाचनेवाली आई। यह बहुत सुन्दर थी। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि इन्द्र की सभा में कोई अप्सरा भी उसके समान सुन्दर न होगी। जिस दिन से विदूषकों का उससे परिचय हुआ था, वे दोनों उस दिन से उससे विवाह करने की इच्छा करने लगे। दोनों को एक दूसरे की इच्छा के बारे में मालूम हो गया। "हम दोनों जाकर कर्णिका को अपनी इच्छा के बारे में बतायेंगे। वह जिसको चाहेगी उससे शादी कर लेगी।" उन दोनों ने आपस में निश्चय किया।

हसोड़ों से तो सब कोई हिल मिलकर बातें करते हैं। कर्णिका भी रम्भ और कुम्भ से घुल मिलकर रहती थी। अगर कभी उसे किसी बात पर शोक होता तो वे दोनों जाकर उसे खूब हँसाते। और जब



ऐसे विदूषकों ने उससे शादी करनी चाही तो वह सोच न सकी कि क्या करे। हास्य में दोनों ही बराबर थे, अगर शक्ल सूरत देखकर शादी करने की सोचे भी तो रम्भ बहुत दुबला, और कुम्भ बहुत मोटा था। इसलिये उसने उन दोनों की परीक्षा ली।

"हास्य में तुम दोनों ही बहुत प्रवीण हो। न एक बड़ा है, न एक छोटा। परन्तु अन्य रसों को व्यक्त करने में तुम्हारी क्या खूबी है, यह कोई नहीं जानता। करुणा रस और बीभत्स रस के व्यक्तीकरण में जो कोई अधिक प्रतिभा दिखायेगा, मैं उससे शादी करूँगी। क्या तुम दोनों यह मानते हो?" कर्णिका ने पूछा।

विदूषक मान तो गये। पर कर्णिका की बात पर दोनों का उत्साह कुछ ठण्डा पड़ गया। क्योंकि उनके मुँह देखकर ही लोग हँसते थे फिर वे रौद्र, शृङ्गार, बीभत्स, भयानक, करुणा....रस से कैसे लोगों को आनन्दित कर सकते हैं!

रम्भ और कुम्भ दोनों के लिए यह एक विकट समस्या-सी बन गई। रम्भ ने निश्चय कर लिया कि उसके भाग्य में





कर्णिका से विवाह करना न लिखा था। केवल कुम्भ दिन-रात माथापच्ची करने लगा।

कुछ दिन बीत गये। एक दिन सवेरे तालाब में नहाने कुम्भ चला आ रहा था, तो उसे एक मोटे, मूछोंवाले आदमी ने मिल कर, झुककर कहा- "नमस्ते महाराज!"

"तुम कौन हो? क्या तुम्हें मुझसे कुछ काम है?" कुम्भ ने पूछा।

"बाबू, मैं बहुत निर्दय हूँ। राजा के यहाँ दस साल से नौकर हूँ। जिस किसी को मृत्यु दण्ड मिलता है, उसका सिर काटना मेरा काम है।" उस व्यक्ति ने कहा। यह सुनते ही कुम्भ दाँत पीसने लगा। "तो तुम्हें मुझसे क्या काम है?" उसने पूछा।

"मैंने नौकरी छोड़ दी है। बौद्धधर्म ग्रहण कर लूँगा। जो पाप किये हैं वे काफी हैं। बाबू ! पेट के लिए हम बहुत पाप करते हैं। कितनी ही मुसीबतें झेलकर मैने यह नौकरी पाई थी। अगर मैने अपने सारे पाप लोगों को सुनाये तो मुझे वे धर्म परिवर्तन करने देंगे। आज रात को चौक में मुझे अपनी सारी कहानी सुनानी पड़ेगी।" उस आदमी ने कहा।

"तो चाहते हो कि मैं भी आकर सुनूँ!" कुम्भ ने कहा।

जल्लाद ने झुक कर कहा-"बाबू! आप भी क्या कह रहे हैं! में अनपढ़ हूँ। क्या कहना चाहिए और क्या नहीं कहना चाहिए, यह भी मैं नहीं जानता हूँ। आप जैसे पढ़े लिखों को मदद करनी होगी। आप मुझे कृपा करके यह सिखाइये कि बातें कैसे करनी चाहिए। पाँच दस आदमियों के सामने खड़े होने में ही मेरे पैर काँपने लगते हैं।"

झट कुम्भ के दिमाग में एक बात कौंधी। उसने उस दिन, रात को जल्लाद की

तरह मूँछे लगाकर चौक में जाकर भाषण करने की सोची।

"अरे, तेरा नाम क्या है? क्या तुझे शहर में बहुत लोग जानने पहचानने वाले हैं?" कुम्भ ने पूछा।

"मेरा नाम कण्टक है। जल्लाद को जानने वाले नहीं होते बाबु!" जल्लाद ने कहा।

"तो तुम अपनी सारी जीवनी सुनाओ।" कुम्भ ने कहा। जल्लाद ने अपनी सारी कहानी विदूषक को सुनाई।

सब सुनकर कुम्भ ने कहा-"अच्छा तो आज रात तुम घर ही रहना। तुम्हारी जगह में भाषण दूँगा। यह तुम्हारी जिम्मेवारी रही कि किसी को कुछ न मालूम हो।" यह जल्लाद से कह कर वह सीधे कर्णिका के घर गया। रम्भ भी वहाँ था।

"आज रात तुम दोनों चौक में आओ। वहीं लोगों को मैं नौ रसों का आस्वादान कराऊँगा।" कुम्भ ने यह कह कर जल्लाद की कहानी सुनाई।

उस दिन शाम को ढिँढोरा पीटा गया। यह घोषणा की गई कि कण्टक नाम का जल्लाद बौद्ध मत ग्रहण करने वाला था। इसलिए



आज चौक में अपनी पापों की कहानी वह सब लोगों के समक्ष सुनायेगा।

चौक में करीब करीब दो हजार आदमी जमा हो गए। उनमें कर्णिका और रम्भ भी थे। कुम्भ ने अपने शरीर पर हल्का हल्का काला रङ्ग पोत लिया, मूँछ भी लगा ली। सिर पर एक रङ्गीन पगड़ी पहन ली। गले के हार में ताबीज डाल कर, वह जल्लाद की आवाज में बातें करने लगा।

उसने पहले पहल कण्टक के बचपन के बारे में हास्यरस में बताया। फिर उसने

जब बताया कि उसके पत्नी, बच्चे कैसे भूख से तड़पा करते थे, तो लोग आँसू बहाने लगे। फिर उसने उन अपराधियों की कहानी सुनाई जिनके उसने सिर काटे थे। इस तरह उसने लोगों में रौद्र, बीभत्स और भयानक रसों की अनुभूति करवाई। इस पापमय जीवन को छोड़ कर मैं बौद्ध मत ग्रहण करने जा रहा हूँ, यह निश्चय करके लोगों को शान्ति रस का भी परिचय दिया।

कुम्भ के वापस आने पर रम्भ और कर्णिका ने उसकी नटन कला की प्रशंसा की।

"जब तू बातें करके अलग चला गया था तो हमारे बगल में बैठे एक बूढ़े ने पूछा, यह कण्टक रहता कहाँ है? मैं इससे बातें करना चाहता हूँ। उसका घर दुर्गालय के पास ही है। नाम शक्तिसिंह है। क्या जाओगे? यह शक्तिसिंह बहुत धनी मालूम होता है। शायद तुम्हारा सम्मान करे।" रम्भ ने कहा।

"यह नाटक क्या मुझे खेलना पड़ेगा? अच्छा, तो खेलूँगा। मुझे कोई आपत्ति नहीं है।" कुम्भ ने कहा।

अगले दिन वह कण्टक का वेष धारण कर दुर्गालय के पीछे के घर में शक्तिसिंह



को ढूँढ़ता गया। शक्तिसिंह तो जल्दी से मिल गया। पर यह भी पता लग गया कि वह रईस न था। वह बहुत बूढ़ा था। मुँह पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं।

"अन्दर आओ, डरो मत, कल तुम्हारी कहानी सुन कर मुझे बहुत दया आई। तुम्हें ईनाम में देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है। यह अंगूर का रस है। इसे ही पीओ।" शक्तिसिंह के कहा। उसने उससे बहुत प्रेम से बातें कीं।

कुम्भ बिना हिचकिचाये शक्तिसिंह का दिया हुआ अंगूरों का रस गटागट पी गया।

"तुमने कहा था कि जिन लोगों का तुमने सिर काटा था उनमें सबसे अधिक बहादुर रणसिंह था। वह मेरा लड़का था। इकलौता। वह निरपराधी था। फिर भी वह तेरे गँड़ासे का शिकार हुआ। मैं अब तक उसकी मौत का बदला नहीं ले पाया था। मैं यह सोच ही रहा था कि बिना बदला लिए ही चला जाऊँगा कि इतने में तुम दिखाई दिये। क्या अंगूर का रस अभी बाकी है? या सब पी लिया है?" बूढ़े ने गुस्से में काँपते हुए पूछा।



कुम्भ सब जान गया। उसने जहर मिला अंगूर का रस पिया था। वह सब पी गया था। एक बून्द भी न छोड़ी थी। कुम्म पसीना पसीना हो गया। उसने उलटी करनी चाही। "पगले! कहाँ बचकर जाओगे? एक और घण्टे में तुम्हारी जिन्दगी खतम हो जायेगी।" बूढ़े ने कहा।

"मेरा कोई कसूर नहीं है। तुम्हारे लड़के को राजा ने मृत्यु दण्ड दिया था। मैने राजा की आज्ञा का पालन किया। इसमें मेरा कोई कसूर नहीं है। मुझे तुमने क्यों विष दिया?" कुम्भ यह कह कर ओर जोर से रोने लगा।

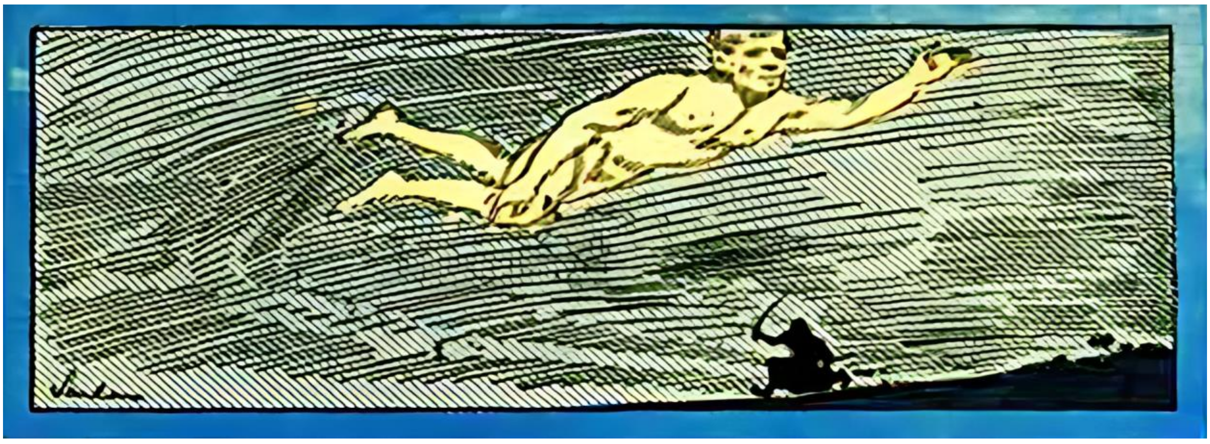
"यही है क्या तेरी नाटक खेलने की शक्ति?" कहकर शक्तिसिंह ने अपने मुख और सिर पर लगा आवरण दूर कर दिया। यह देख कि रम्भ ही शक्तिसिंह था, कुम्भ हैरान रह गया।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा-"राजा! रम्भ और कुम्भ में कौन अधिक प्रतिभाशाली था? कर्णिका को किसके साथ शादी करनी चाहिए? अगर तुमने इस प्रश्न का जान बूझ कर उत्तर न दिया तो तुम्हारा सिर फूट जायेगा।"

"कुम्भ ने सब लोगों के सामने नव रसों का व्यक्तीकरण किया था। उसमें ही सचमुच प्रतिभा है। रम्भ ने तो सिर्फ उसे ठगा ही था। उसने कुम्भ में भय तो पैदा कर दिया था पर भयङ्कर रस उत्पन्न न किया था। इसलिये कुम्भ ही कर्णिका से शादी करने लायक है।" विक्रमार्क ने कहा।

राजा का इस प्रकार मौनभङ्ग होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य हो गया और पेड़ पर जा बैठा।

(कल्पित)



बूढ़ा घोडा

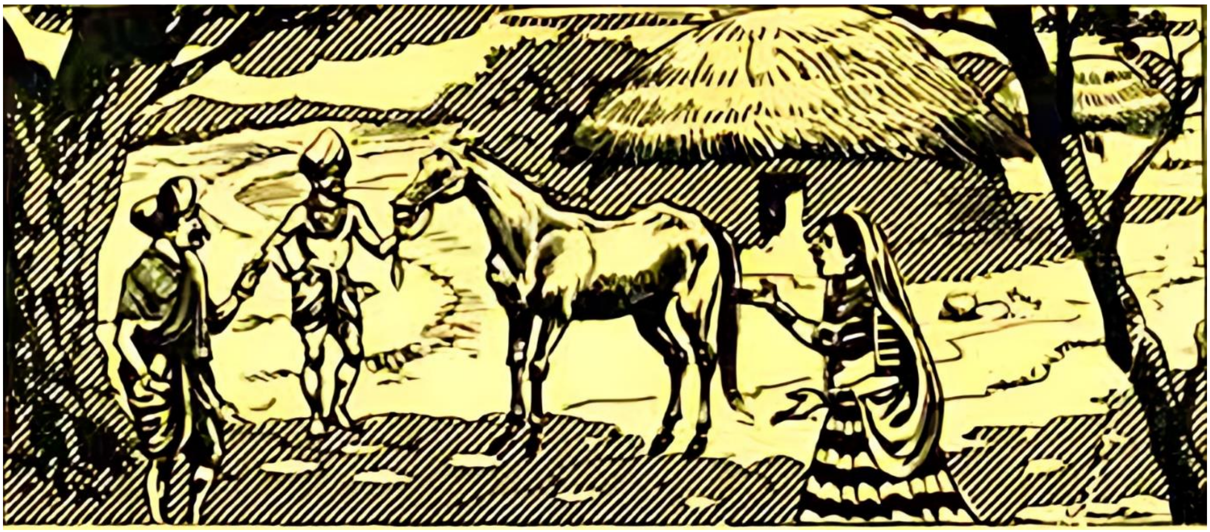
एक बञ्जारे के पास एक घोड़ा था। वह बहुत बूढ़ा हो गया था। सवारी के लिए बिल्कुल नलायक था। इसलिए उसने उस घोड़े को किसी भी दाम पर बेचना चाहा।

यह जानकर कि एक घोड़ा बिकाऊ है, एक किसान उस बञ्जारे के पास गया। जब बञ्जारे और किसान में बातचीत हो रही थी तो बञ्जारे की पत्नी वहाँ आई। "हमारे घोड़े के बारे में बात हो रही है! उस घोड़े को कौन खरीदेगा?" बञ्जारे की पत्नी ने कहा।

"यह क्या कह रही हो....! तुम खुद अपने घोड़े को खराब बता रही हो।" किसान ने कहा।

"जानते हो, कल क्या हुआ? पास में ही एक खरगोश था। उसे जैसे तैसे पकड़कर, उसके बच्चे हम खाना चाहते थे। परन्तु उस घोड़े ने उसे खदेड़ा, पीछा किया, और हजम कर लिया। हमारे या हमारे बच्चों के लिए कुछ भी न छोड़ा।" बञ्जारे की पत्नी ने कहा।

किसान को अचरज हुआ। "तो यह घोड़ा इतनी तेज़ दौड़ता है?" यह सोचकर, बञ्जारे से घोड़ा खरीदकर वह ले गया।





चिड़िया

मादा गरुड़ पक्षियों की रानी है। उसमें जो बल और फुर्ती होती है, किसी और पक्षी में नहीं होती। इसीलिए और पक्षियों पर जब आपत्ति आती है या अन्याय होता है, तो वे उसके पास आकर शिकायत करते। मादा गरुड़ उनकी सहायता भी किया करती।

एक चिड़िया ने खेत में तीन अण्डे दिये। पास के एक खोल में रहनेवाले छोटे चूहे ने उसके दो अण्डे चुरा लिये। निस्सहाय

चिड़िया ने अपनी रानी गरुड़ के पास ज़ाकर कहा-"मेरी रक्षा कीजिए। मैंने तीन अण्डे दिये, उन में से दो को चूहे ने चुरा लिया। वह मेरा तीसरा अण्डा भी चुराकर मेरी कोख को चोट पहुँचायेगा। इस आपत्ति से आप मेरी रक्षा कीजिये।" चिड़िया ने गरुड़ से निवेदन किया।

गरुड़ के पास कितने ही पक्षी थे। उनमें कई सौंदर्य, बल, गान, क्रीड़ा आदि के लिए प्रसिद्ध थे। शतुर्मुग, बाज़, मोर, गौरय्ये, तोते आदि के मुकाबले में इस बिचारी चिड़िया की क्या बिसात थी।

इसलिए गरुड़ ने खिझकर कहा-"अगर हर छोटी बात के लिए तुम मेरे पास आने लगो, तो मैं क्या कर सकती हूँ। अगर

तुम्हारे छोटे-से अण्डों की रक्षा करना भी यदि मेरा काम हो तो मैं क्या राज्य कर सकूँगी? यही नहीं, अपने बच्चों की रक्षा

करना हर माता को सीखना चाहिए। मुझे न तङ्ग करो। अपने अण्डों की तुम खुद रक्षा करो।"

"मैं छोटा-सा पक्षी हूँ। नादान।अनजान। आप को मेरी उपेक्षा करना शोभा नहीं देता।" चिड़िया ने कहा।

"तुम मुझे उपदेश देने चली हो। जाओ, जाओ।" गरुड़ ने कहा।

चिड़िया दुखी हो अपने अण्डे के पास आई, अण्डे की रक्षा करने के लिए साथ दूब की घास का टुकड़ा भी लेती आई। इतने में चूहा भी आ पहुँचा। यह सोचकर कि उसका तीसरा अण्डा भी चला जायेगा, उसने घास के टुकड़े से चूहे को मारा। वह टुकड़ा सीधे उसकी आँखों में लगा।

चूहा दर्द न सह सका। वह बाण की तरह भागा। दिखाई तो देता न था; इसलिए वह एक सोते शेर के नाक में घुस गया। शेर चौंक कर उठा। यह सोचकर कि उसपर कोई बड़ी आपत्ति आनेवाली थी, वह भागकर एक तालाब में कूद गया।

उस समय, नागों का राजा वासुकी उस तालाब में तैर रहा था। अकस्मात् शेर के तालाब में कूदने से वह घबरा उठा, और आकाश में उड़ने लगा। इस तरह उड़ते हुए बासुकी ने मेरु पर्वत के शिखर पर गरुड़ के घोंसले को धकेला। उस में से एक अण्डा नीचे गिरकर टुकड़े टुकड़े हो गया।



जब अण्डा टूट गया, तो मादा गरुड़ ने वासुकी से कहा-"यह क्या किया तुम ने? वासुकी, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? मेरा अण्डा तुमने क्यों तोड़ दिया? कितने सालों बाद मैंने एक अण्डा दिया था। देखा, तुमने मेरा कितना नुक्सान किया है!" बासुकी ने कहा-"मैंने जानबूझकर कुछ नहीं किया है। मैं तालाब में तैर रहा था कि एक शेर चिंघाड़ता मेरी ओर आया। मैं घबड़ाकर हवा में उड़ा। मैं तुम्हारा घोंसला भी नहीं देख सका।"

दोनों ने जाकर शेर से पूछा-"चिंघाड़ते हुए तुम तालाब में क्यों कूदे? जानते हो, इस कारण कितना नुक्सान हुआ है?"

"माफ़ कीजिये। मुझे ही नहीं मालुम था कि मैं क्या कर रहा था। मैं जङ्गल में पड़ा सो रहा था कि मेरी नाक में एक चूहा घुसा। मैं न जान सका कि क्या हुआ था। मैंने सोचा कि मुझ पर आपति आ पड़ी है, मैं भागा। न मैंने तालाब देखा, न वासुकी को ही।" शेर ने कहा।

जब चूहे से पूछा गया तो उसने कहा-"मेरा कोई कसूर नहीं है। मैं चिड़िया का अण्डा खाने गया तो उसने दूब की घास मेरे आँखों में भोंकी। मेरी आँख फूट गई। हो सकता है कि उस समय में शेर की नाक में चला गया हूँ। मैं जान बूझकर भला क्यों शेर के नाक में घुसता?"

गरुड़ सब कुछ जान गया। सारी गलती उसी की थी। जब चिड़िया ने आकर उससे शिकायत की थी, तो वह उसे बहुत मामूली लगी थी। गरुड़ जान गया कि छोटी बातों की उपेक्षा करने से वे बड़ी आपत्तियों के कारण भी हो सकती है।





एक निर्जन वन में सब प्रकार के पशु और पक्षी, एक शेर के आधीन सुख से रहा करते थे। उस जङ्गल में कभी किसी आदमी ने पैर न रखा था। उस जङ्गल के एक बत्तख को एक सपना आया। सपने में, उसे एक आदमी दिखाई दिया। उसने उसे प्रेम से पास पुकारा। जब बचख मनुष्य के पास जा रही थी, उसे लगा, जैसे किसी ने उसके कान में जोर से चिल्लाया हो-"तुम उस पशु के पास मत जाओ। वह सब पशुओं से अधिक क्रूर है।" यह सुनते ही बत्तख की नींद टूटी और वह जङ्गल में भागने लगी।

भागते-भागते बतख, शेर की गुफा के पास गई। गुफा के पास युवराजा खड़ा हुआ था। युवराजा को उसके माता-पिता गुफा से बाहर न जाने देते थे। इसलिए उसे सांसारिक ज्ञान न था। जङ्गल के और जन्तुओं के बारे में भी वह न जानता था। एक पक्षी को घबराकर आते देख, युवराजा ने पूछा-"अरे, पक्षी तुम कौन हो? किस जाति के हो? क्यों भागे आ रहे हो?"

"महाराज, में बतख हूँ। बतखों की जाति की हूँ। मैंने सपने में एक मनुष्य देखा और मुझे कहा गया कि वह सबसे अधिक भयङ्कर पशु है। यह सुनकर मैं डरकर भागी आ रही हूँ।" बत्तख ने कहा।

"अरी पगली, तुम्हें मेरे होते किसी पशु का डर नहीं होना चाहिए। उस मनुष्य को चीरकर मैं टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा। मुझे भी इसी तरह सपने में मनुष्य के बारे में सावधान किया गया था। परन्तु मुझपर कोई आपत्ति न आई।" कहकर, युवराजा जिस दिशा से बत्तख आई



थी, उस ओर जाने लगा। बत्तख भी फुदकती फुदकती उसके पीछे चलने लगी।

उनके कुछ दूर जाने के बाद, उनको धूल दिखाई दी। "वह देखो, मनुष्य आ रहा है। तुम छुप जाओ। मैं उसकी खबर लेता हूँ।" शेर ने कहा। परन्तु जब वह पास आया तो वह गधा निकला। पर शेर ने उसको न पहचाना। उसने गधे से पूछा-"तुम कौन हो? किस जाति के हो? क्यों यों घबराकर भागे जा रहे हो?"

"युवराज, मैं गधा हूँ। मेरी गधे की जाति है। मनुष्य ने मुझे क्या क्या कष्ट दिये हैं, आप नहीं जानते। कितनी मार मैंने खाई है! ज्यों ज्यों मेरी शक्ति कम होती गई, त्यों त्यों मुझपर मार भी अधिक होती गई। खाना भी कम कर दिया गया। अब वह मुझे मार देगा।" गधे ने कहा।

"जब तक मैं पशुओं का राजा हूँ, तुम्हें कोई नहीं मार सकता। देख, मैं मनुष्य को कैसे मारता हूँ?" शेर ने कहा।

"माफ कीजिये, महाराज, मुझ में इतनी हिम्मत नहीं है कि फिर उस मनुष्य की नज़र में पड़ूँ।" कहकर गधा आगे बढ़ गया।

फिर दूरी पर धूल उड़ी। परन्तु इस बार एक घोड़ा, मुख से झाग टपकाता, हाँफता हाँफता आया। युवराजा ने उसे रोककर,

उसका नाम, जाति, वगैरह के बारे में पूछा। यह भी पूछा कि यह क्यों भागा आ रहा था। "महाराज, मनुष्य से डरकर आ रहा हूँ।" घोड़े ने कहा।

"इतने बड़े हो, तुम में इतनी ताकत है। मनुष्य से डरते हो? क्या मनुष्य में तुमसे अधिक शक्ति है?" शेर ने पूछा।

"युबराज, न हो तो न सही, वह क्रूर है और अक्लमन्द है। मुझसे इतने दिनों

तक गुलामी करवाई। मेरी पीठ पर चढ़कर मेरे मुख में लगाम लगाकर, मुझे मार मार कर हज़ारों मील सवारी की और जब मैं बूढ़ा हो जाता हूँ तो मेरा चमड़ा भी खोंस लेता है।" घोड़े ने कहा। शेर ने उसको बहुत दाढस बँधाया। पर घोड़ा उसकी बिना सुने आगे चला गया।

उसके बाद ऊँट भागता आया। वह भी मनुष्य से डरकर भागा आ रहा था। "तुम सबकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। इसलिए तुम भागो मत। यहीं ठहरो। देखते रहो, जो तुम्हारे पीछे मनुष्य भागा आ रहा है, उसका मैं क्या करता हूँ।" शेर ने कहा। परन्तु ऊँट माफी माँगकर आगे बढ़ गया ताकि वह आदमी की नज़र में न आ जाये। मनुष्य को देखकर भागनेवालों को उसपर विश्वास न था। यह देख, शेर को आश्चर्य हुआ।

थोड़ी देर बाद, एक बूढ़ा आदमी उस तरफ आया। उसके सिरपर एक टोकरा था। टोकरे में बढ़ईगिरी के औजार थे और दो-चार लकड़ी के तख्ते थे। उसने शेर को देखकर, टोकरा उतार कर उसके सामने साष्टाङ्ग प्रणाम किया।



"जय हो, युग-युग जिये महाराज।" उसने कहा। झुर्रियोंवाले उस मनुष्य को देखकर, शेर जोर से हँसा। फिर उसने पूछा-"तुम कौन हो? किस जाति के हो? क्या तुम भी मनुष्य से डरकर भागे आ रहे हो?" बतख आदमी को देखते ही मूर्छित हो गई। इसलिए वह शेर को न बता पाई कि वह ही मनुष्य था।

"महाराज, मैं बढ़ई हूँ, बढ़ई जाति का हूँ। आपके मन्त्री, चीते ने घर बनवाने के लिए बुलवाया है। इसलिए मैं घर बनाने के लिए जा रहा हूँ।" बढ़ई ने कहा।

"पहले हमारे लिए घर बिना बनाये चीते के लिए कैसे बनाओगे? पहले हमारा घर बनाकर जाओ।" शेर ने कहा।

"पहिले चीते का घर बनाने दीजिये। फिर आपके लिए महल बनाऊँगा।" बढ़ई ने टोकरा सिरपर रखकर जाते हुए कहा।

"बढ़ई जाति कोई पशु है? तुम जानते हो मैं कौन हूँ?" शेर ने अपना अगला पञ्जा उठाकर धीमे से बढ़ई की छाती पर धक्का दिया। धक्के से बढ़ई धड़ाम से नीचे गिरा। टोकरे में रखे औजारों के गिरने से आवाज़ हुई।

"अच्छा हुजूर, जैसे आप कहेंगे वैसा करूँगा।" कहकर, बढ़ई ने एक पिञ्जरा तैयार किया। उसमें एक दरवाज़ा बनाया, जिसमें से शेर अन्दर जा सकता था। "अन्दर जाकर देखिये।" बढ़ई ने कहा। शेर के अन्दर जाते ही बढ़ई ने दरवाजा बन्द कर दिया। वह उसको शहर ले गया।

"ये बढ़ई, यह तुमने क्या किया?" शेर अन्दर से गरजा।

"मैं ही मनुष्य हूँ। मुझे देखकर तुम्हें भाग जाना चाहिए।" बढ़ई ने कहा।





[१८]

[रूपधर का काम ख़तम हो गया। जो राजकुमार उसकी पत्नी से शादी करने के लिए उसके घर में धरना दिये हुये थे, उनका उसने और उसके लड़के ने मिलकर काम तमाम कर दिया। रूपधर ने अपने पराक्रम से ही काम न लिया, अपितु सूझबूझ से भी काम लिया। उस दिन देवता भी उसकी तरफ थे। पर तब भी रूपधर की सब समस्यायें हल नहीं हो गई थी।]

जब यह सब हो रहा था, तब पद्ममुखी सो रही थी। बहुकीर्ति ने उसके शयनकक्ष में आकर कहा- "उठो, उठो अब क्या और सोओगी! तुम्हारा पति आया है। दुष्टों का नाश हो चुका है। तुम्हारे अच्छे दिन शुरू हो गये हैं।" उसने उसको उठाया।

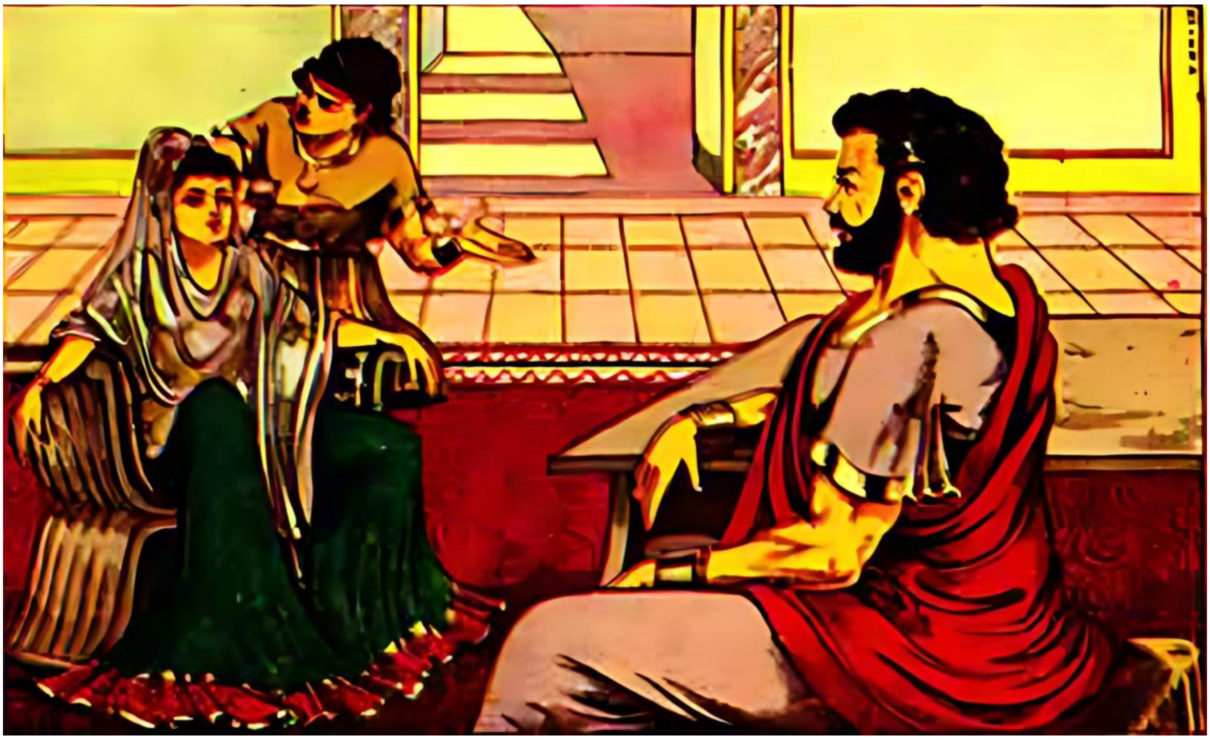
पहले तो पद्ममुखी को अपने कानों पर ही विश्वास न हुआ। उसने सन्देह करते हुए कहा- 'भाग्य का खेल बड़ा बिचित्र होता है। फिर भी उस आदमी को तो देखूँ जिसने इन दुष्टों का काम तमाम कर दिया है।" वह उस बुढ़िया को साथ लेकर नीचे उतरी और रूपघर के सामने रखी कुर्सी पर बैठ गई। उसके मुँह पर कोई भाव न था। रूपधर ने सोचा कि वह उससे बोलेगी, पर उसको मौन पा, उसे आश्चर्य हुआ।

"माँ, तुम स्त्री हो या पत्थर? तुम पिताजी से बात क्यों नहीं करती? क्यों यों पत्थर बनी बैठी हो?" धीरमति ने अपनी माँ से पूछा।

"बेटा, क्या बातें करने के लिए कहते हो! मेरा दिल काठ का सा हो गया है। अगर तेरे पिता ही हैं तो मैं उनको पहचान ही लूँगी। इस घर में कई ऐसी चीजें हैं, जो सिवाय हम दोनों के कोई नहीं जानता।" पद्ममुखी ने कहा।

रूपधर ने अपने लड़के से कहा- "अपनी माँ को तङ्ग न करो। उसे मुझे परखने दो। मैं कौन हूँ, यह वह आसानी से जान सकती है। मेरे इन चीथड़ों को देख कर वह मुझे कोई और समझ रही है। हमें यह सोचना है कि अब क्या करना चाहिये। यदि कोई एक आदमी को ही मारता है तो उसे देश छोड़कर जाना होता है, और हमने यहाँ इथाका के सभी प्रमुख पुरुषों को मार दिया है। इस बात का तुम ख्याल रखो।"

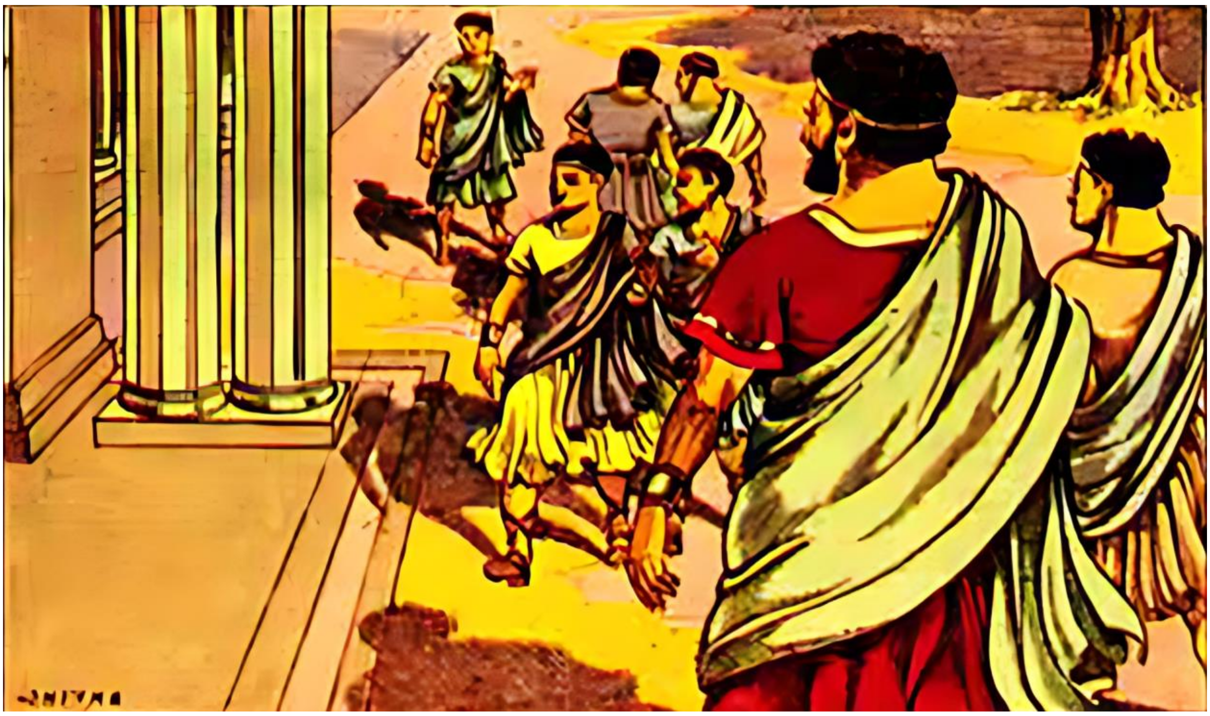
"तो तुम ही सोचो कि हमें क्या करना होगा! तुम से अधिक इन बातों को कौन जानता है।" धीरमति ने कहा।



"अच्छा, तो मेरी बात सुनो। पहले सब नहा धोकर, अच्छे कपड़े पहनें। फिर बाजे-गाजे बजायेंगे, ताकि बाहर वाले सोचें कि अन्दर कोई विवाह हो रहा है। यह किसी को पता न लगे कि ये सब मारे गये हैं। इस बीच हम नगर छोड़कर, गाँवों में, जङ्गलों में भाग जायेंगे।" रूपधर ने कहा।

रूपधर के कथन के अनुसार, सब नहा धोकर अच्छे अच्छे कपड़े और आभूषण पहन कर, बाजे-गाजे के साथ नृत्य करने लगे। बाहर, चलते फिरते लोग सोचने लगे-"ओहो, तो इतने दिनों बाद इस घर की औरत का दिल ठीक हुआ है...... शायद गये हुये पति के लिए और ज्यादा प्रतीक्षा न कर सकी।"

रूपधर ने स्नान करके जब शरीर पर तेल की मालिश की, तो वह दूसरा ही आदमी हो गया। उसने अपनी पत्नी से कहा-"तुम भी क्या पत्नी हो? अगर किसी और का पति बीस साल बाद घर आता तो वह बड़े प्रेम से बातचीत करती।" फिर उसने बूढ़ी दायी से कहा-"दादी! मेरे लिए बिस्तर लगाओ मैं सोऊँगा।"





तुरन्त पद्ममुखी ने दासी से कहा- "दादी! उनका पलङ्ग उधर लाकर, उस पर खालें और कम्बल बिछाओ।"

रूपधर यह सुनते ही खौल उठा। "मेरे पलङ्ग को किसने हटाया है? वह हिलने हटने वाला पलङ्ग न था।"

इस पलङ्ग में एक रहस्य था। जब रूपचर ने वह घर बनवाया था तो उसके शयनकक्ष में एक पेड़ था। उसने उस पेड़

को कटवा दिया, मगर उसके ठूँठ को भूमि में ही रहने दिया। उसने उसे पलङ्ग का एक पाया बनाकर और पाये बनवाये।

यह रहस्य वह जानता था कि नहीं, यह जानने के लिए ही पद्ममुखी ने वह बात कही थी। रूपधर की बात से उसका सन्देह जाता रहा। उसने अपने पति का आलिङ्गन करके कहा-"आप गुस्सा न कीजिये। मैं तो इस डर में हमेशा घबराती रहती हूँ कि कोई मुझे धोखा न दे दे।"

रूपधर अपनी पत्नी की सावधानी देखकर बहुत खुश हुआ। उस दिन रात को पद्ममुखी ने अपने पति के मुख उसके सब अनुभव सुने। सवेरे, रूपधर कवच पहनकर, धीरमति को उठाकर, उसको साथ लेकर चल पड़ा। वे शहर से बाहर चले गये। उन्हें किसी ने न देखा।

वे दोनों, उस जगह गये, जहाँ रूपधर का पिता पिपीलक रहा करता था। वह पिपीलक, जिसने कभी राज्य किया था, उन दिनों वहाँ एक घर बनाकर, पेड़-पौधों को पालता, गरीबी में दिन काट रहा था। रूपधर, अपने पिता के नौकरों को दावत तैयार करने के लिए कह कर, बाग में चला गया। वह बूढ़ा पिपीलक, एक पेड़ के चारों ओर क्यारी बनाता हुआ दिखाई दिया। उसके कुड़ते पर कितने ही जोड़ लगे हुए थे।



उसको देखते ही रूपधर की आँखों में आसूँ आ गये। उसने तुरन्त उसके पास जाकर अपनी सारी कहानी सुनानी चाही। फिर उसने यह जानना चाहा कि वह उसे पहचानता है कि नहीं। इसलिए उसने पिता के पास जाकर कहा- "क्यों, बाबा! तुम अपने बाग के पेड़-पौधों की तो खूब परबाह करते हो? तुम्हारी कोई परवाह करता नहीं मालूम होता। क्या तुम्हारी नौकरी से तुम्हारा मालिक खुश नहीं है?"

"बेटा, तुम कौन हो? तुम किस देश के हो?" पिपीलक ने पूछा।

"बाबा, मेरा संसार देश है। पाँच साल पहले मुझे रूपधर नाम का एक आदमी दिखाई दिया था। यह उसी का देश है न? मैं यह खोज रहा हूँ कि वह फिर मिले और हम दोनों उपहारों का अदला बदला करें।" रूपधर ने कहा।

बुढ़ा अपने लड़के का नाम सुनकर मिट्टी से सने हाथों को मुख पर रख रोने लगा।

रूपधर का दिल थम-सा गया। उसने अपने पिता को गले लगाकर कहा-"पिताजी, मैं ही हूँ? मेरे लिए अब भी क्यों रोते हो? बीस वर्ष बाद दुनियाँ भर की मुसीबतें झेलकर अपने देश वापस आया हूँ। मेरे घर बैठे बैठे जो दुष्ट मेरी पत्नी को सता रहे थे उन सबको मार कर यहाँ आया हूँ।"

"बेटा, क्या ईथाका बाले तुम्हे जिन्दा रहने देंगे? आस पड़ोस बालों की मदद लेकर तुम पर हमला करेंगे।" पिपीलक ने कहा।

"डरो मत, पिताजी, आइये, भोजन करें, मैंने भोजन तैयार करने के लिए कह दिया है।" यह कहता रूपधर अपने पिता को घर ले आया। वहाँ सूअरों के रखवाले

और ग्वाले ने खाना तैयार कर रखा था। जब पिपीलक स्नान करके आया तो रूपधर को, उसको मजबूत और ताकतवर पा आश्चर्य हुआ। फिर सबने भोजन किया। इस बीच नगर में रूपधर द्वारा की गई हत्याओं के बारे में खबर दावाग्नि की तरह फैल गई। कई हाहाकार करते, रोते धोते रूपधर के घर के चारों ओर जमा हो गये। हर कोई अपने आदमी का शव पहचान कर उठाकर ले गये। जो दूर देश से आये थे उनकी लाशों को कश्तियों पर भिजवा दिया गया।

फिर नगर में एक सभा हुई। दुर्बुद्धि के पिता ने सबको उकसाया। "दोस्तो! इस व्यक्ति ने यह सब हत्याकाण्ड किया है। वह हत्यारा है। यह कितनी ही नावें, कितने ही युवक लेकर युद्ध में गया। नावें खो बैठा और युवकों को खो बैठा। अब अकेला वापस आया है और देश के अच्छे नव युवकों को भी निगल गया। इससे पहले कि यह बैलास या एलीस भाग जाये, हमें दुष्ट से बदला लेना चाहिए। अगर हमने अपने पुत्रों के हत्यारे को दण्ड न दिया तो यह कलङ्क हमेशा हमारे वंश पर बना



रहेगा। मैं मरने के लिए तैयार हूँ; पर यह अपमान सहने के लिए तैयार नहीं हूँ। बदला लेने के लिए तैयार हो जाइये।"

उसकी बातें सुनकर, उसकी ओर देखकर, देखने वालों के दिल पिघल उठे। परन्तु ठीक उसी समय वहाँ एक आदमी आया।

वह उन दो व्यक्तियों में से था, जिनको रूपधर ने जीवित छोड़ दिया था। उसने उस सभा में कहा- "इथाका के रहने वालो, मेरी एक बात सुनो, जब यह हत्याकाण्ड हो रहा था तब मैं बहीं था। रूपधर की बगल में बुद्धिमती देवी को खड़ा मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा था। यह हत्याकाण्ड भगवान के निश्चय पर ही हुआ है।"

यह सुन सबको आश्चर्य हुआ। एक और वृद्ध ने उठकर कहा-"जो हो गया है सो हो गया। क्यों और खून खराबी करते हो? अब जाने दो। सचमुच गलती तो तुम्हारे लड़के की है। मैंने उन्हें रोकने केलिए बहुत पहले कहा था। पर तुमने ध्यान न दिया। यह सोचकर कि रूपधर वापस न आयेगा, तुम्हारे लड़के उसके घर में घुस गये। उसका घर



लूटा। उसकी पत्नी का अपमान किया। उनको अपने अपराधों का दण्ड मिला। इसमें किसी की गलती नहीं है।"

इन बातों को सभा के आधे व्यक्ति मान गये और वे वहाँ से उठकर चले गये। बाकी आधे लोगों ने बदला लेने का निश्चय किया। दुर्बुद्धि के पिता के नेतृत्व में हथियार लेकर वे निकल पड़े। वे जब पिपीलक की जगह पहुँचे तो रूपधर, उसका पिता व अन्य लोग हथियार लेकर उनका मुकाबला करने के लिए तैयार हो गये।

धीरमति ने अपने पिता से कहा- "पिता जी! अब मैं अपना करतब दिखाऊँगा, देखिए।"

पिपीलक ने बड़ी खुशी से कहा-"हे भगवान! यह दिन मेरे जीवन में पर्व दिन है। मेरा लड़का और पोता अपना पराक्रम दिखाने में होड़ कर रहे हैं।"

उसमें भी न जाने कहाँ का उत्साह आ गया। उसने अपना भाला उठा कर जोर से दुर्बुद्धि के पिता पर फेंका। वह उस चोट से नीचे गिर पड़ा। रूपधर आदि और लोगों पर टूट पड़े।

परन्तु इतने में उन्हें बुद्धिमती देवी की वाणी सुनाई दी।

"इथाका के निवासियो, यह रक्तपात काफी है। बस करो।"

यह सुनते ही सच स्तब्ध रह गये। उनके हाथों से हथियार खिसक कर नीचे गिर गये। जो लोग रूपधर से बदला लेने के लिए आये थे वे नगर वापस चले गए।

रूपधर को उसके बाद शत्रुओं का भय न रहा। वह अपनी पत्नी, पुत्र और पिता के साथ सुख से जीवन व्यतीत करने लगा।

(समाप्त)





महेन्द्रगिरी नामक ग्राम में देव नाम का एक भलामानस रहा करता था। उसे भगवान में अनन्य विश्वास था। उसने विवाह न किया था। घरबार चलाने का भार भी उस पर न था। अच्छे कार्यों के करने में ही उसका जीवन गुजरा था।

क्योंकि, जो कुछ पास था, उसीको सावधानी से वह खर्चता, इसलिये कुछ दिनों में उसके पास दो हजार रुपये जमा हो गये। वह सोच ही रहा था कि उसका कैसे उपयोग करे कि उसे एक खुश खबरी सुनाई दी कि हरिद्वार में एक बड़ा मठ था, और वहाँ यात्रियों और सन्यासियों का अच्छा आदर-सत्कार होता था। देव ने अपना सारा धन उस मठ को देना चाहा और यात्रा का पुण्य भी कमाना चाहा। वह एक शुभ दिन निश्चित करके, भीम नाम के अपने एक नौकर को साथ लेकर, हरिद्वार के लिए निकल पड़ा।

वे दोनों, कुछ दिन बाद चलते चलते प्रयाग पहुँचे। वहाँ से उन्होंने नौका में हरिद्वार जाने की ठानी। प्रयाग पहुँचते ही उन्होंने त्रिवेणी में स्नान किया। एक धर्मशाला में अपने ठहरने की व्यवस्था की।

उन दिनों प्रयाग की हालत बुरी थी। पियक्कड़ो, जुआखोर, चोर, डाकुओं का वहाँ जोर था। जहाँ देखो वहीं मनोरञ्जन होता। जो कोई भगवान में भक्ति दिखाता उसे नादान मूर्ख समझा जाता। रोज कहीं न कहीं हत्या होती। राज-कर्मचारी भी मनमानी करते। इसलिये उस नगर में किसी के साथ भी ठीक न्याय नहीं होता। ये सब बातें देव को मालुम तो हो गईं; पर उसने फिक्र न की। उसने भीम से

रामदीन

कहा-"भगवान हैं ही, हमें किसी से नहीं डरना चाहिये।"

उनकी धर्मशाला के पास रमेश नाम का एक व्यक्ति आया। वह तीस वर्ष का नवयुवक था। छुटपन से ही, वह आवारागिर्दी, पीने, जुआ खेलने में अपना समय व्यर्थ करता आया था। कितनों का ही कर्ज उसने दबा रखा था। जब कभी वह जुये में जीतता तो राजकर्मचारियों को घूस देता। वे उसकी मदद करते। इसलिये कर्जवाले भी उसका कुछ न कर पाये थे। परन्तु वह परिचितों से और कर्ज न ले सका। जब उसके पास पैसा न होता तो धर्मशालाओं के आस-पास घूमता, परदेसियों को मीठी मीठी बातें करके वश में करता। उनका मन बहलाव कर, अपनी जरूरतों के लिये भी उनसे ही खर्चवाता।

रमेश ने देव के पास आकर उसकी सारी कहानी मालूम कर ली। देव तो सीधा साधा था ही, उसने उसे साफ साफ बता दिया कि उसके पास दो हजार रुपये थे। रमेश ने उनसे कहा-"परसों तक आपको नाव नहीं मिलेगी। यह बहुत वाहियात शहर है। आप इस धर्मशाला में रह सकते हैं, पर यहाँ



का भोजन आपके अनुकूल न होगा। इसलिये मेरी यह सलाह है कि आप मेरे साथ चले आइये। मैं एक अपने दोस्त का घर दिखाऊँगा। वहाँ आपको अच्छा भोजन मिल सकेगा। मैं आज वहीं भोजन कर रहा हूँ।"

"भाई आज एकादशी है। इसलिये मैं उपवास कर रहा हूँ। अगर कहीं पुराण पठन या कोई उपदेश हो रहा हो, तो वहाँ जाने की सोच रहा हूँ। भीम का शहर देखने का ईरादा है। उसे



भोजन की कोई असुविधा नहीं है। वह कहीं भी खा लेगा।" देव ने कहा।

"मुझे एकादशी व्रत की आदत नहीं है। परन्तु आपके साथ में भी भोजन छोड़ दूँगा। दो तीन गलियाँ परे कोई स्वामी रोज उपदेश दे रहे हैं। क्या वहाँ चलें?" रमेश ने पूछा।

देव ने सन्तुष्ट हो अपने नौकर भीम से कहा-"अरे भीम, मेरा थैला और चादर तो दो।" भीम ने धर्मशाला के कमरे में जाकर अपने मालिक का थैला और चादर लाकर उनको दे दिया।

फिर देव और रमेश गलियों में चलने लगे। बहुत दूर जाने के बाद देव ने कहा-"शायद तुम यह नहीं जानते की हमें कहाँ जाना है!"

"बढ़ के निशान के लिए देख रहा हूँ। दो चार कदम और चलिये।" रमेश ने कहा। उनके कुछ दूर जाने के बाद एक चौराहा दिखाई दिया, वहाँ बढ़ का पेड़ भी था। "देखा? हम ठीक रास्ते पर ही आये हैं। वह जो सफेद घर दिखाई दे रहा है, वहीं उपदेश हो रहा है।" रमेश ने कहा।

रमेश तो यह जानता था कि वहाँ जुआ खेला जाता था। पर देव विचारे को कुछ न मालुम था। दरवाजे पर, एक आदमी को लाठी लिए हुये खड़ा देख कर उसने चौक कर पूछा।-"क्या यहाँ भी चौकीदार होते हैं, जहाँ उपदेश होता है? यह तो मैंने कहीं नहीं सुना है।"

शायद वह इसलिये खड़ा है ताकि दुष्ट अन्दर न जा सकें। हमें कोई नहीं रोकेगा।" कह कर रमेश ने अन्दर रास्ता दिखाया।

अन्दर काफी रोशनी न थी। देव ने अनुमान किया कि वहाँ बहुत से आदमी थे। एक तरफ कुछ बैठे कोई चीज पीते लगते थे। जो व्यक्ति सबको कसोरों में सफ़ेद पेय दे रहा था उसने रमेश को उसके नाम से बुलाया।

"आओ, थोड़ी देर बैठकर चलें, ये बुला रहे हैं। नहीं तो अच्छा न होगा।" रमेश ने देव से कान में कहा। दोनों एक तरफ जाकर एक चबूतरे पर बैठ गये।

"ये सब क्या पी रहे हैं?" देव ने पूछा।

"दूध में अच्छी जड़ी बूटी डालकर उबालते हैं। उपवास करनेवालों को जरूर पीना चाहिये। यह यहाँ की परम्परा है।" अभी रमेश कह ही रहा था कि एक नौकर ने आकर दो कसोरों में भाङ्ग लाकर दी। देव ने बहुत मना किया। पर रमेश ने जबर्दस्ती, उसे एक कसोरा भाङ्ग पिला ही दी।

"छी, छी, यह क्या चीज है.... मैं गलती से पी गया हूँ। हमें तुरन्त यहाँ से चले जाना चाहिये।" देव ने कहा।

"आप यह नहीं भूलिये कि हम किस काम पर आये थे।" रमेश ने कहा।





फिर उसने नौकर को बुलाकर पूछा-"तत्वोपदेश हो रहा है कि नहीं?" उसका मतलब था-"जुआ चल रहा है कि नहीं?"

नौकर ने अन्दर की ओर हाथ हिलाया। रमेश देव का हाथ पकड़कर अन्दर ले गया। वहाँ दीये की रोशनी में बहुत से लोग जुआ खेल रहे थे।

यह देख कर देव ने कहा-"देखा बेटा, तुम भटक गये और मुझे जुआ खेलने की जगह ले आये। जो हुआ सो हुआ। कम से कम अब ही यहाँ से चलें।"

"बाबू! जो जुआ नहीं खेलते हैं उनको अन्दर नहीं आना चाहिये। अब आ ही गये हैं इसलिये एक बाजी लगाते चलें। यह यहाँ का रिवाज है। बदकिस्मती से मेरे पास एक कानी कौड़ी भी नहीं है। अगर आपने पाँच रुपये उधार दिये तो में बाजी लगा दूँगा। चाहे हम जीतें या हारे हम अपने रास्ते जा सकते हैं। यही नहीं मेरा हाथ अच्छा है, हमेशा बाजी मारी ही है, हारी कभी नहीं, आप अपने पैसे की फिक्र न कीजिये।" रमेश ने कहा।

देव ने मना किया। रमेश ने आँखें तर करके कहा-"अगर बिना बाजी लगाये बाहर गये तो मुझे यहाँ के लोग बुरी तरह पीटेंगे। आप तो परदेशी हो, वे आपको कुछ न कहेंगे। केवल पाँच रुपये दीजिये।"

"अगर तुम यह कहो कि तुम बाज़ी जीतने पर भी जीता हुआ पैसा तुम न लोगे तो मैं पाँच रुपये दूँगा। क्या जुये में जीता रुपया ले सकते हैं? तुम तो अक्लमन्द हो।" देव ने कहा। भाङ्ग का असर उस पर होने लगा था। उसे गुस्सा आ रहा था।

यह कहकर उसने अपना थैला खोलकर हाथ डालकर अन्दर जो देखा तो वह सन्न रह गया। उस थैले में उसका लोटा, कपड़े वगैरह तो थे परन्तु रुपयों की थैली न थी।"

"रुपया किसी ने ले लिया है। वह रुपया, जिसे मैने मठ में देने का इरादा किया था।" देव चिल्लाया।

रमेश भी अनुमान न कर सका कि वह सब रुपया क्या हो गया था। भाङ्ग पीने की जगह जहाँ देव ने अपना थैला रखा था वहाँ से किसीने उसे ले तो नहीं लिया था?

"आपका नौकर भीम विश्वासपात्र है न? ऐसे आदमियों के पास रुपये का होना खतरनाक है। वे एक घण्टे में सब रुपया उड़ा देंगे। यह बहुत ही खराब शहर है।" उसने देव से कहा।

"वाहियात रुपया! खैर, भीम कहीं फँस फँसा न जाय, यही रुपये से कहीं अधिक मुख्य है। उसे अकेले न घूमना चाहिये। मनोरञ्जन के लिए गया है। अब उसे कैसे पकड़ा जाय?" देव ने कहा।

"मैदान में मिल सकता है। चलिए वहाँ चलें।" रमेश ने कहा।



दोनों मिलकर मैदान में गये। वहाँ बहुत से पण्डाल लगे हुए थे। नाटक, नृत्य वगैरह हो रहे थे। मैदान के बीच में मेंढ़े लड़ाये जा रहे थे।

वह सब देख देव का भय बढ़ने लगा, साथ साथ भाङ्ग का नशा भी चढ़ रहा था। जब भीम कहीं नहीं दिखाई दिया तो उसे गुस्सा भी आने लगा। सचमुच भीम वहाँ था, जहाँ मेंढ़े लड़ाये जा रहे थे। जब उसने अपने मालिक को देखा, तो वह भीड़ में जा छुपा। यकायक देव को बहुत गुस्सा आया-"नीचों, तुम अपने पापों को क्या इन मेंढ़ों



से रोकेगे?" यह कहता वह लोगों को चीरता अन्दर गया और लड़ते भेड़ों में से एक को उठा लाया, और भागने लगा।

वह नगर के कोतवाल का मेंढ़ा था। शहर के बड़े बड़े आदमियों ने उस पर हजारों रुपयों की बाजी लगा रखी थी। जब कोई उसे उठाकर ले गया तो लोगों में तहलका मच गया। वे उसका पीछा करने लगे। उसी समय देव मूर्छित हो गिर पड़ा।

जब होश आई तो वह उस शहर के जेलखाने में था। बहुत रात गुजर गई थी। सवेरा होने वाला था। जो कुछ कल गुजरा था, वह सब याद करके वह सोचने लगा-"जो धन में मठ को देना चाहता था, वह चला गया। कोई ऐसी चीज़ पी बैठा, जो मुझे नहीं पीनी चाहिये थी। कोई ऐसा काम भी कर बैठा हूँ, जो मुझे नहीं करना चाहिये था। इसलिए जेल में हूँ। नहीं मालूम भीम कहाँ है! यह सब होने के लिए, मैंने कौन-सी गलती की होगी? मैंने तो कोई गलती नहीं की? क्या रमेश की गलती है? नहीं, वह बिचारा तो बहुत अच्छा है। रास्ता भटककर मुझे वह वहाँ ले गया था। उसका कोई और उद्देश्य न था। भगवान मेरी परीक्षा ले रहे हैं। और कुछ नहीं।"

सवेरे होते ही रमेश आया। "बाबू! मेरे कारण आपको बहुत कष्ट हुआ है। आपकी रिहाई के लिए यह कोतवाल की आज्ञा है। आइये, चलें।" उसने देव से कहा।

"बिना सुनवाई के हमें कैसे रिहा कर दिया गया?" देव ने पूछा।

"कल जब आपको सैनिक पकड़कर ले गये थे, तब मैं सीधा कोतवाल के घर गया,

वह कुछ मित्रों के साथ जुआ खेल रहा था, और जुये में हार रहा था। मुझे देखते ही उसने कहा-"रमेश, आओ। थोड़ी देर हमारी तरफ से खेलो।" आधी रात तक खेलता रहा। मैं हर बाजी जीता। वह जानता ही था कि मैं उसके पास क्यों गया था, इसलिए उसने मुझे आपकी रिहाई की आज्ञा ही न दी, किन्तु जीते हुए पैसे में आधा हिस्सा भी दिया। ये रहे दो हज़ार रुपये।" रमेश ने कहा।

"कितनी गलती की बेटा, मैं जेल में ही रहूँगा। न्यायाधिकारी मेरी सुनवाई करें और मुझे दण्ड दें। खैर, जुआ खेलकर मुझे छुड़ाना बिल्कुल ठीक नहीं है। बुराई से अच्छाई कैसे आ सकती है?" देव ने कहा।

रमेश यह सुनकर हैरान रह गया। उसने देव जितना सज्जन कभी न देखा था। वह यह भी न जानता था कि संसार में उस जैसे भी लोग थे। उस जैसे को धोखा देकर कैद में डलवाना उसे ही अखर रहा था। वह पछताने लगा ।

रमेश ने कुछ देर सोचकर कहा-"कोतवाल की आज्ञा, राजाज्ञा के



समान है। इस आज्ञा में लिखा है कि आपको कैद छोड़कर बाहर जाना होगा।"

"अच्छा, बेटा, तो आज्ञा का पालन करना ही होगा। आओ चलो चलें।" देव ने कहा।

दोनों मिलकर धर्मशाला में गये। धर्मशाला के अधिकारी ने देव को देखकर कहा-"आप शायद हरिद्वार जा रहे हैं। थोड़ी देर में नौका जा रही है।"

"तो मैं भी चला जाऊँगा।" देव ने कहा।

"बाबू, आप मेरे ऊपर एक कृपा कीजिये। ये दो हज़ार रुपये लेकर आप

उस मठ को दे दीजिये। आप मेरे कारण अपना रुपया खो बैठे थे। मैं आपके लिए इससे अधिक क्या कर सकता हूँ।" रमेश ने कहा।

"मैं इस रुपये को नहीं लूँगा। अन्याय द्वारा कमाया हुआ रुपया है यह। उसे अनाथों को दे दो। भीम यदि दिखाई दे तो उसे घर जाने के लिए कहना। इस दूर देश में भगवान ने तुम्हें मेरे पास बन्धु के रुप में भेजा।" देव ने कहा।

दोनों मिलकर गङ्गा नदी के घाट पर लगये। देव के चढ़ने के कुछ देर बाद नौका चली। उस नाव को जाता देख रमेश ने आँसू बहाये। उसी समय उसने अपना जीवन पूरी तरह बदल देने की सोची। उस धन से उसने सब का कर्ज चुकाकर अपने गाँव जाकर औरों की तरह उसने जीवन निर्वाह करने का निश्चय किया।

देव की नौका अभी आधी मील गई होगी कि भीम किनारे किनारे भागता भागता आया। पतवारवाले से देव ने कहा-"भाई, जरा नाव को किनारे तक ले चलो, वह जो भागा आ रहा है, हमारा ही आदमी है।"

भीम ने नौका में चढ़ते ही, रुपयों का थैला मालिक को देते हुए कहा- "उस आदमी की शक्ल देखते ही मुझे सन्देह हुआ। इसलिए रुपया मैंने अपने पास ही रख लिया था।"

अपना रुपया फिर देखकर देव सारे कष्ट भूल गया। उसने भीम से कहा- "ऐसा न कहो। अगर वह न होता, तो हम इस शहर में कितनी दिक्कतें झेलते। रमेश बहुत अच्छे दिल का आदमी है।" नौका चलती गई।




CHITRA